ॐ

ॐ श्री जटलबोधस्वारस्यैकपदे

केषुकिद काड़ा

T

❀ अथ ❀

दुर्गासप्तशती ।

भाषाटीकासहिता ।

T

अथ दुर्गासप्तशती ।

भाषाटीकासहिता ।

संक्षेपमें दुर्गापाठकी विधि—प्रथम संकल्प, उसके वाद पुस्तकका पूजन, फिर कवचपाठ, अर्गलापाठ, कीलकपाठ, नवार्णका अष्टोत्तरशतजप, तदनन्तर रात्रिसूक्त तब दुर्गासप्तशती फिर देवीसूक्त, नवार्णजप, विसर्जन इति ।

अथ संकल्पः ।

अद्येत्यादि॰ श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासर-

T

स्वतीदेवताप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाख्यं कर्म करिष्ये तदङ्गत्वेनादौ कवचार्गलाकीलकपठनमाद्यन्तयोरष्टोत्तर शतसंख्याकनवार्णजपपूर्वकं क्रमेण रात्रिसूक्तदेवीसूक्त-पठनमन्ते रहस्यत्रयपठनं च करिष्ये ।

(संकल्प कर फिर)

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
T
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥

चण्डिका देवीको प्रणामकर मार्कण्डेय ऋषि कहने लगे कि–हे ब्रह्माजो ! संसारमें जो परम गुप्त है, मनुष्योंकी सबप्रकारसे रक्षाकरनेवाला है और जो पहले

अथ देवीकवचम् ॥ ॐ नमश्चण्डिकायै । मार्कण्डेय उवाच । ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच । अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् । देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥ २ ॥ प्रथमं शैलपुत्री

किसीसे कहा नहीं है वह मुझसे कहो ॥ १ ॥ ब्रह्माजी कहने लगे कि–हे विप्र ! जो अत्यंत गुप्त, संपूर्ण प्राणियोंका उपकारक और पवित्र देवी का कवच है, ह महामुने ! [illegible]को सुनो ॥ २ ॥ पहिली शैलपुत्री, दूसरी ब्रह्मचारिणी, तीसरी

T

चन्द्रघंटा, चौथी कूष्माण्डा ॥ ३ ॥ पाँचवीं स्कन्दमाता, छठीं कात्यायनी, सातवीं कालरात्री, आठवीं महागौरी ॥ ४ ॥ और नवीं सिद्धिदात्री इस प्रकार जो ये नौ

च द्वितीयंब्रह्मचारिणी । तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥ ३ ॥ पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च । सप्तमंकालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्॥४॥ नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः। उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥ ५ ॥ अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे । विषमे दुर्गमे [illegible] भयार्ताः

दुर्गाओं के नाम महात्मा ब्रह्माजीने कहे हैं॥५॥अग्निसे जलता हुआ,शत्रुओं के

बीचमें प्राप्तहुआ, रणमें और बड़े सङ्कटमें प्राप्तहुआ, मनुष्य भयसे पीड़ित होकरशरण में जाकर जो इन नामोंका स्मरण करते हैं ॥६॥ उनको रणसङ्कटमें किंचिन्मात्र भी

शरणं गताः॥६॥ न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे ॥ नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं नहि ॥ ७ ॥ यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते । ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥ ८ ॥ प्रेतसंस्था तु

अशुभ नहीं होता और उनको विपत्तियाँ नहीं होतीं तथा शोक, दुःख और भय इनमें से भी कुछ नहीं होता ॥७॥ और हे देवेशि ! जिन्होंने भक्तिपूर्वक तुम्हारा स्मरण कियाहै, निश्चय उनकी वृद्धि होतीहै और जो तुम्हारा स्मरण करतेहैंउनकी तुम निःसंदेहरक्षाकरतीहो॥८॥चामुंडादेवी प्रेतपरस्थित होतीहैअर्थात्प्रेतकीसवारी

करती है, वाराही भैंसेकी ऐन्द्री हस्ती की, वैष्णवी गरुडकी॥६॥माहेश्वरी वृषकी, कौमारी मयूर [मोर] की सवारी करती है। और हाथमें कमल लिये विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी देवी कमलमें स्थित होती है॥ १० ॥ और श्वेत रूपको धारण

चामुण्डा वाराही महिषासना। ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥६॥ माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना। लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥ १० ॥ श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना। ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥ ११ ॥ इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः। नानाभरणशोभाढ्या

करनेवाली ईश्वरी देवी बैलकी सवारी करती हैं। संपूर्ण आभूषणोंसे भूषित ब्राह्मी देवी हंसकी सवा[illegible] हैं॥ ११ ॥ इस प्रकार ये संपूर्ण माताएं [देवियाँ]

संपूर्ण योगोंसे युक्त, अनेक प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे युक्त नाना प्रकारके रत्नोंसे शोभित ॥ १२ ॥ क्रोधसे आकुल हुई रथकी सवारी किये दीख पड़तीहैं

नानारत्नोपशोभिताः ॥१२॥ दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः । शंखं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् । खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ॥ १३ ॥ कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् । दैत्यानां

और शंख, चक्र, गदा, शक्ति, हल, मुसल, खेटक, तोमर, फरसा, फाँसी ॥१३॥ भाला, त्रिशूल और उत्तम आयुध शार्ङ्ग नामा धनुष इस प्रकार आयुधों (हथियारों) को दैत्योंके नाशके लिये, भक्तोंके अभयके लिये और देवताओं के हितके लिये देवियाँ धारण करती हैं, हे महारौद्रे ! तुमको नमस्कार है । हे महाघोर पराक्रमे !

तुझको नमस्कार है ॥ १४ ॥१५॥ हे महाबले ! हे महान् उत्साहवाली ! हे महा भयको नाशकरनेवाली ! हे दुःखसे दर्शन देनेवाली ! हे शत्रुओं को भयप्रदानेवाली

देहनाशाय भक्तानामभयाय च ॥ १४ ॥ धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै । नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ॥ १५ ॥ महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनी । त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणाँ भयवर्धिनी ॥१६॥ प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता । दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी ॥ १७ ॥

देवि ! मेरी रक्षाकरो ॥१६॥ ऐन्द्री देवी पूर्व में मेरी रक्षाकरें, अग्निदेवता अग्निकोण में रक्षाकरें, वाराहीदेवी दक्षिणमें रक्षाकरें खड्गधारिणीदेवी नैऋत्यकोणमें रक्षाकरें १७

और वारुणीदेवी पश्चिममें रक्षाकरे, मृगवाहिनीदेवी वायुकोणमें रक्षाकरें कौमारी उत्तरमेंरक्षाकरें, शूलधारिणी देवीईशानकोणमेंरक्षाकरें॥१८॥ब्रह्माणी ऊपरमेंरक्षा

प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद्वायव्यां मृगवाहिनी।
उदीच्यां पातु कौमारी ईशान्यां शूलधारिणी॥ १८॥
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा। एवं दश-
दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना॥ १९॥ जया मे चाग्रतः
पातु विजया पातु पृष्ठतः। अजिता वामपार्श्वे तु दक्षि-

करें और वैष्णवी नीचेसे रक्षाकरें। इसी प्रकार शव [मुरदा] की सवारी करने वाली चामुण्डा देवी दशों दिशाओंमें रक्षा करें॥ १९॥ जयादेवी आगेसे मेरी रक्षा करें, विजया पीछेसे रक्षा करें. अजितादेवी बाई ओरसे रक्षा करें. और

अपराजिता देवी दाहिनी ओरसे रक्षा करें ॥२०॥ उद्योतिनी देवी शिखाकी रक्षा करें, उमा शिरकी रक्षा करें, मालाधरी ललाटकी रक्षा करें यशस्विनी भ्रुकुटियोंकी

णे चापराजिता ॥२०॥ शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता। मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद्यशस्विनी ॥ २१ ॥ त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके। शंखिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ॥२२॥ कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शांकरी। नासिकायां

रक्षा करें ॥ २१ ॥ और त्रिनेत्रा देवी भ्रुकुटियों के मध्यमें रक्षा करें, यमघंटा नासिकाके पुटोंकी रक्षा करें, शंखिनी नेत्रोंके मध्यमें और द्वारवासिनी कानों में रक्षा करें ॥२२॥ कालिका कपोलोंकी और शाङ्करी कर्णमूलोंकी रक्षाकरें, सुगंधा

नासिकामें और चर्चिका ऊपरके ओंठमें रक्षा करें ॥ २३ ॥ अमृतकला नीचे के ओंठकी और सरस्वती जिह्वा की रक्षा करें और कौमारी दाँतोंकी, चण्डिका

सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ॥ २३ ॥ अधरे चामृत-कला जिह्वायां च सरस्वती । दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ॥ २४ ॥ घंटिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके । कामाक्षी चिबुकं रक्षेद्वाचं मे सर्वमङ्गला ॥ २५ ॥ ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे ध-

कंठभागकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ चित्रघंटा घेंटूको,महामाया तालुकी,कामाक्षीठोडो को और सर्वमङ्गला वाणीकी रक्षा करें ॥ २५ ॥ भद्रकाली ग्रीवाकी, धनुर्धारी पीठके रीढ़को नीलग्रीवा कंठके बाहरको और नलकूबरी नाड़ीकी नलियोंकी रक्षा

करें ॥२६॥ खड्गिनी कन्धोंकी वज्रधारिणी भुजाओंको, दण्डिनी दोनों हाथोंकी और अम्बिका संपूर्ण अंगुलियोंकी रक्षा करें॥२७॥ शूलेश्वरी नखोंकी, कुलेश्वरी कुक्षिकी

नुर्धरी । नीलग्रीवा बहिः कण्ठे नलिकां नलकूबरी ॥ २६ ॥
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद्बाहू मे वज्रधारिणी । हस्तयो-
र्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च ॥ २७ ॥ नखाञ्छू-
लेश्वरी रक्षेत् कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी । स्तनौ रक्षेन्म-
हादेवी मनः शोकविनाशिनी ॥ २८ ॥ हृदये
ललिता देवी उदरे शूलधारिणी । नाभौ च कामिनी

महादेवी स्तनोंकी, शोकविनाशिनी मनकी रक्षा करे॥२८॥ ललिता देवी हृदयकी, शूल

धारिणी उदरकी, कामिनी नाभिकी और गुह्येश्वरी गुह्यकी रक्षा करें ॥ २९ ॥ पूतना कामिका लिंगकी, महिषवाहिनी गुदाकी, भगवतीकटिकी और विन्ध्यवासिनी

रक्षेद्गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ॥२९॥ पूतनाकामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी। कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ॥ ३० ॥ जंघे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी। गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी ॥ ३१ ॥ पादांगुलीषु श्रीरक्षेत्पादाधस्तलवासिनी । नखान्दंष्ट्रा

देवी दोनों गोडों की रक्षा करें॥३०॥सवकामनाओंकी देनेवालीमहाबलाजंघाओं की नारसिंही गुल्फों (घुटनों) की और तैजसी देवी पाँवोंके पृष्ठभागकी रक्षा करे ॥३१॥ श्रीधरी पाँवों के अगुलियोंकी, तलवासिनी पांवों के अधोभागों [तलुवों]

की रक्षा करें करालिनी दंष्ट्राओं (डाढों) की और ऊर्ध्वकेशिनी केशोंकी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ कौमारी रोमकूपोंको, वागीश्वरी त्वचाको और पार्वती रक्त, मज्जा,

कराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ॥ ३२ ॥ रोमकूपेषु कौमारी त्वचं वागीश्वरी तथा । रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ॥ ३३ ॥ अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी । पद्मावती पद्मकोशे कफे चूड़ामणिस्तथा ॥ ३४ ॥ ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसं-

वसा, मांस, हड्डियाँ और मेद इनको रक्षा करें ॥ ३३ ॥ कालरात्रि आँतोंकी मुकुटेश्वरी पित्तको, पद्मावती पद्मकोशकी और चूड़ामणि कफकी रक्षा करें ॥३४॥ ज्वालामुखी नखकी ज्वालाकी, अभेद्या सर्व संधियों की, ब्रह्माणी वीर्यकी

और छत्रेश्वरी छाया की रक्षा करें ॥३५॥ धर्मधारिणी मेरे अहंकार, मन और बुद्धिकी रक्षा करें, प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समानको वज्रहस्ता रक्षा

धिषु ॥ शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायाँ छत्रेश्वरी तथा ॥ ३५॥ अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी। प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ॥ ३६ ॥ वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना। रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ॥ ३७॥ सत्त्वं रजस्तम-

करें ॥ ३६ ॥ मेरे प्राणको कल्याणशोभना रक्षा करें और योगिनी देवी रस, रूप, गन्ध, शब्द और स्पर्श इनकी रक्षा करें ॥ ३७ ॥ नारायणी संपूर्णकाल में सत्व, रज और, तमकी रक्षा करें, वाराही आयुकी और वैष्णवी धर्म की रक्षा

T

करें ॥ ३८ ॥ चक्रिणी यश, कीर्ति, लक्ष्मी, धन और विद्याकी रक्षाकरें, इन्द्राणी मेरे शरीर को रक्षा करें और हे चण्डिके ! तुम मेरे पशुओंको रक्षा करो ॥३९॥

श्चैव रक्षेन्नारायणी सदा। आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी ॥३८॥ यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी। गोत्रमिन्द्राणी मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ॥ ३९ ॥ पुत्रान्रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥ पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा ॥ ४० ॥ राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता। रक्षाहीनं

महालक्ष्मी पुत्रोंकी और भैरवी भार्याकी रक्षाकरें औरमार्गमें कुशल करनेवाली सुपथा देवी रक्षा करें ॥ ४० ॥ महालक्ष्मी राजद्वार में रक्षा करें और

विजया चारोंतरफ स्थितहोकर मेरी रक्षाकरें और जो स्थान रक्षाहीनहैं और कवचसे वर्जित हैं ॥ ४१ ॥ उनकी संपूर्ण पापों का नाश करनेवाली जयंती देवी रक्षा

तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ॥४१॥ तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्तीपापनाशिनी। पदमेकं न गच्छेत्तुयदीच्छेच्छुभमात्मनः॥४२॥ कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति। तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः ॥ ४३ ॥ यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्। परमैश्वर्य-

करें। जो मनुष्य अपने शुभकी इच्छा चाहे तो कवचके विना एक पग भी गमन न करे ॥ ४२ ॥ नित्य कवच से आवृत हुआ मनुष्य जहाँ २ जाता है वहाँ २ द्रव्यलाभ और संपूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाला विजय पाता है ॥ ४३ ॥

पुरुष जिस २ कामना का चिन्तन करते हैं निश्चय करके वे प्राप्त होते हैं और पृथ्वीतल पर अतुल (अपार) ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ और कवच से

मतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥४४॥ निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः। त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥ ४५॥ इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम्। यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धया-

आवृत (आच्छादित) मनुष्य नहीं जाताहुआ होकर भीयुद्ध में निर्भय होजाना है, और त्रैलोक्य में पूज्य होता है ॥४५॥ यह देवी का कवच देवताओं को भी दुर्लभ है, श्रद्धायुक्त और निश्चल भावसेजो मनुष्य नित्य तीनों संध्याओंमें

इस कवच का पाठ करता है ॥४६॥ उसको दैवीकला प्राप्त होती है, त्रैलोक्य में अजेय होता है और अपमृत्युसे रहित होकर सौ वर्षों के ऊपरतक जीता है

न्वितः ॥ ४६ ॥ दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः। जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥ ४७ ॥ नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ॥ स्थावरं जंगमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥ ४८ ॥ अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले। भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥ ४९ ॥ सहजा कुलजा माला

॥ ४७ ॥ लता विस्फोटक आदि सम्पूर्ण व्याधियां नष्ट हो जाती हैं स्थावर विष, जंगमविष और कृत्रिमविष ॥ ४८ ॥ और पृथ्वीपर होनेवाले सम्पूर्ण अभिचार मंत्र, यंत्र, भूचर प्राणी, खेचर प्राणी, जलचरप्राणी, और उपदेशिक ॥ ४९ ॥ संसर्गसे

उत्पन्न हुए रोग, कुलमें उत्पन्न हुए रोग, गंडमाला, डाकिनी, शाकिनी अंतरिक्ष-चर प्राणी, महाबलवाली, घोर डाकिनियाँ ॥ ५० ॥ ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष, गंधर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, वेताल, कूष्माण्ड और भैरवादि ॥५१॥ ये सब कवच

डाकिनी शाकिनी तथा । अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥ ५० ॥ ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः । ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥ ५१ ॥ नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते मानोन्नतिर्भवेद्राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ॥५२॥ यशसा

जिसके हृदय में हैं उस मनुष्य के दर्शनसे उपरोक्त बाधायें नष्ट हो जाती हैं, और इस कवच से मनकी उन्नति होती है और राजा के तेजको बढ़ानेवाला तो केवल यह कवच ही है अन्य कवचादि नहीं ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य प्रथम इस कवचका

पाठ करके पश्चात् चंडी सप्तशतीं पाठ करता है पृथ्वीतल में उसके यश और कीर्ति वृद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ जब तक भूमण्डल पर्वत बगीचे तथा वनोंको धारण करता है तबतक इस कवचका पाठ करनेवाले मनुष्य की सन्तति

वर्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले। जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ॥५३॥ यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैल वनकाननम् । तावत्तिष्ठति मेदिन्यां संततिःपुत्रपौत्रिकी ॥५४॥ देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् । प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥ ५५ ॥ लभते

पृथ्वीपर स्थित रहती है ॥ ५४ ॥ और महामायाकी कृपासे इस मनुष्य शरीरके अन्त में उस परम स्थान को नित्य प्राप्त रहताहै कि जो देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ५५ ॥ और यह पुरुष परमरूप को प्राप्त होकर शिवजीके संग आनंद करता

है ॥५६॥इति वाराहपुराणान्तर्गतहरिहरब्रह्मविरचित देवीकवचभाषाटीकासमाप्त॥

परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ ५६ ॥ इतिवाराहपुराणे हरिहरब्रह्मविरचितं देव्या कवचं समाप्तम् ॥

अथार्गलास्तोत्रम् ।

ॐनमश्चण्डिकाय । जयन्तीमङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गाक्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते ॥१॥ जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि जय

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा रूपोंवाली तुझ देवीको नमस्कार है ॥ १ ॥ हे देवि! तुम्हारी जयहो । हे चामुण्डे ! तुम्हारी जयहो । हे प्राणियोंकी पीड़ा हरनेवाली ।

तुम्हारी जय हो! हे सर्वगते! हे देवि! तुम्हारी जय हो! हे कालरात्रि! तुझको नमस्कार है ॥ २ ॥ हे मधुकैटभका नाश करने वाली! हे ब्रह्माको वर देने वाली! हे देवि! तुझको नमस्कार है। हे देवि! मुझको रूप दो, जय दो, यश

सर्वगते देवि कालरात्रि नमोस्तुते ॥२॥ मधुकैटभविद्रावि विधातृवरदे नमः। रूपं देहि जयं देहि यशोदेहि द्विषो जहि ॥३॥ महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः। रूपं देहिजयं देहि यशोदेहि द्विषो जहि ॥४॥ रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि। रूपं देहिजयंदेहि यशोदेहिद्विषो

दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ ३ ॥ हे महिषासुरको नाश करनेवाली! हे भक्तोंको सुख देनेवाली! हे देवि! तुझको नमस्कार है। मुझको रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ ४ ॥ हे रक्तबीज का बध करनेवा

लो ! हे चंडमुंडका नाश करनेवालो ! हे देवि ! मुझको रूप दो जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओंको नष्ट करो ॥५॥ हे शुम्भ निशुम्भ और धूम्राक्षको मर्दन

जहि ॥ ५ ॥ शुंभस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ६ ॥ वन्दितांघ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७ ॥ अचिन्त्यरूप-चरिते सर्वशत्रुविनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशोदेहि

करनेवाली देवि ! मुझको रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ ६ ॥ हे वन्दित चरणारविन्दोंवालो ! हे संपूर्ण सौभाग्य देनेवाली देवि ! मुझको रूप दो, जय दो यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो । ७॥ हे अचिं-

न्त्य रूप और चरितवाली ! हे संपूर्ण शत्रुओंको नष्टकरनेवाली ! हे देवि ! मुझ को रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ ८ ॥ हे चंडिके ! दुःखों को नष्ट करनेवाली ! हे देवि ! भक्तसे संपूर्ण काल में नष्ट हुए

द्विषो जहि ॥ ८ ॥ नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥९॥ स्तुवन्द्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १० ॥ चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः । रूपं देहि जयं देहि

अपने भक्तों को रूप दो, जय दो यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥९॥ हे चण्डिके ! हे व्याधिनाशिनी ! भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए अपने जनोंको रूपदो, जय दो, यशदो और मेरे शत्रुको नष्ट करो ॥१०॥ हे चण्डिके ! यहाँ पृथ्वीतल

त से भक्तिसे निरन्तर जो तुम्हारा पूजन करते हैं उनको रूपदो जय दो यश दो और उन केशत्रुओं को नष्ट करो ॥ ११ ॥ हे देवि ! मुझको सौभाग्य दो

यशो देहि द्विषो जहि ॥ ११ ॥ देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १२ ॥ विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १३ ॥ विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् । रूपं दे हि

आरोग्य दो, और परम सुख दो, और रूप दो, जय दो, यश दो, और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ १२ ॥ हे देवि ! शत्रुओंका नाशकरो और अधिक बल उत्पन्न करो और रूप दो जय दो, यशदो, और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ १३ ॥

हे देवि ! मेरा कल्याण करो और मेरे परम सम्पत्ति करो और मुझको रूप दो, यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ १४ ॥ हे सुर असुरोंके मुकुटरत्नोंकी रगड़ से घिसे हुए चरणारविन्द अर्थात् सुर असुरों द्वारा मस्तकोंसे नमस्कृत हे

जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १४ ॥ सुरासुरशिरो-रत्ननिघृष्टचरणेम्बिके । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १५ ॥ विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि

अंबिके ! मुझको रूप दो, जय दो, यश दो, और मेरे शत्रुओंको नष्ट करो ॥ १५ ॥ और हे देवी ! अपने भक्तको विद्यावान् करो यशवाला करो और लक्ष्मीवाला करो और रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं को नष्ट करो

॥ १६ ॥ हे प्रचंड दैत्यों के अभिमान को नष्ट करनेवाली ! हे चण्डिके ! मुझ नम्र हुएको रूप दो, जय दो यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ १७ ॥

। १६ ॥ प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चंडिके प्रणताय मे । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १७ ॥ चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे संस्तुते परमेश्वरि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१८॥ कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि

हे चारभुजावाली ! हे ब्रह्मासे स्तुति की हुई हे परमेश्वरि ! मुझको रूप दो जय दो यशदो और मेरे शत्रुओंको नष्ट करो ॥१८॥ हे निरन्तर भक्तिसे सदा कृष्ण से स्तुति की हुई हे अम्बिके ! मुझको रूपदो, जय दो, यशदो और मेरे शत्रुओं

को नष्ट करो ॥१६॥ हिमाचल की पुत्रीके नाथ शिवजीसे स्तुति की हुई हे परमेश्वरि ! मुझको रूप दो यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥ २० ॥

॥ १६ ॥ हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ॥ रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २०॥ इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २१ ॥ देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि

हे इन्द्राणी के पति (इन्द्र) के सद्भाव से पूजित हुई परमेश्वरि ! मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥२१ ॥ हे देवि ! हे प्रचंडभुज दंडसे दैत्योंके गवको नष्ट करनेवाली ! मुझे रूपदो यशदो और मेरे शत्रुओंको नष्ट करो ॥ २२ ॥ हे देवि ! भक्तजनों के अत्यन्त आनंद को उदय करनेवाली !

हे अम्बिके ! मुझे रूप दो, जय दो यश दो और मेरे शत्रुओंको नष्ट करो ॥२३॥
और हे देवि सुन्दरि ! मनके अनुसार चलनेवाली, कठिन संसार सागर से तारने

॥२२॥ देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके। रूपंदेहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२३॥ पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्। तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥२४॥ इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रंपठेन्नरः स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥२५॥

इतिमार्कण्डेयपुराणे अर्गलास्तोत्रं समाप्तम् ॥

वाली श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होनेवाली ऐसी स्त्री मुझे दो ॥ २४॥ जो मनुष्य प्रथम इस स्तोत्रका पाठ करके पश्चात् महास्तोत्र का पाठ करता है वह चंडी सप्तशती संख्याके सम्पत्तिरूप वर को पाताहै ॥ २५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे अर्गलास्तोत्र भाषाटीका समाप्ता।

अथ कीलकस्तोत्रम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदी दिव्यचक्षुषे ॥ श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे ॥ १ ॥ सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामपि कीलकम् ॥ सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥ सिद्ध्यन्त्युच्चाटना-

मार्कण्डेय ऋषि कहने लगे कि निर्मल ज्ञानरूप शरीर धारणकरने वाले वेद त्रयीरूप तीन नेत्रों को धारण करनेवाले कल्याण की प्राप्तिके कारण अर्धचन्द्र को धारण करनेवाले ऐसे शिवजीको नमस्कार है ॥१॥ जो पुरुषनवार्ण मन्त्रकेकीलकों को जानताहै अ.रजो पुरुष नवार्णमंत्रके जपमें तत्पर रहताहै वहभीकल्याणकोप्राप्त

होता है।२। और इससे उच्चाटन आदि सम्पूर्ण वस्तुएँ भी सिद्ध हो जाती हैं।इसकील कस्तोत्र मात्र करके भी स्तुतिकी हुई देवी सिद्ध होजाती है।३।न तो कोई ऐसामन्त्र है न औषध है न तन्त्र है कि जिसके जप किये बिना सम्पूर्ण उच्चाटनआदि सिद्ध

दीनि वस्तूनि सकलान्यपि। एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति॥ ३ ॥ न मन्त्रो नौषधं तन्त्रं न किंचिदपि विद्यते। विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम्॥४॥ समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशंकामिमां हरः। कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम्॥ ५॥

हो जायँ॥ ४॥ सम्पूर्ण ही वस्तुएँ सिद्ध हो जायँगी महादेवजी इस लोकशङ्काको मानकर इस सम्पूर्ण शुभ को अर्थात् मन्त्र तन्त्र आदिको कील दिये॥५॥ इसी

लिये वही महादेवजी चण्डिकास्तोत्रकी यथावत् नियन्त्रणा अर्थात् उत्कीलन से मनुष्य अच्छा पुण्य पाता है ॥६॥ वह सम्पूर्ण क्षेम कल्याणको पाताहै इसमें सन्देह नहीं सावधान हुआ जो मनुष्य कृष्णपक्ष की चतुर्दशीको अथवा अष्टमी

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तञ्चकार सः । समाप्नोति सुपुण्येन तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥ ६ ॥ सोपि-क्षेममवाप्नोति सर्वमेव न संशयः । कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥ ७ ॥ ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसिद्ध्यति । इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन

को ॥७॥ प्रथम देता है फिर उससे लेता है उसीसे यह दुर्गा प्रसिद्ध होती है अन्यथा नहीं होती है ॥ ऐसे कीलक से यह स्तोत्र महादेवजीने कीलित किया

T

है इसका अभिप्राय ऐसा जानना कि चतुर्दशी तथा अष्टमी को इसका पठन पाठन करने से ही सिद्धि होती है अन्यथा नहीं ॥८॥ जो मनुष्य इस चण्डीसप्तशती को निष्कील करके इसका सम्पुट नित्य जपता है अर्थात् इसका नित्य पाठ

कीलितम् ॥ ८ ॥ यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् । स सिद्धः सगणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥९॥ न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापि हि जायते। नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १० ॥ ज्ञात्वा

करता है वह सिद्ध हो जाता है और विचरते हुए उस पुरुष को कहीं भी भय नहीं होता है और न अपमृत्युके वश में आता है और वह मनुष्य मरके मोक्ष को पाता है ॥९॥१०॥ परन्तु इसकी विधि अच्छी रीतिसे जान करही इसके पाठ का आरंभ करे और विधि न जान कर पाठ करता हुआ नष्ट हो जाता है। इस

लिये पण्डित जन इसको सांगोपांग जानकर पश्चात् पाठकरना आरंभ करें॥११॥ हे देवि ! स्त्रीजनों में जो कुछ सौभाग्य आदि दीख पड़ता है वह सम्पूर्ण आपकी

प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति। ततो ज्ञात्वैव संपन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥११॥ सौभाग्यादि च यत्किंचिद् दृश्यते ललनाजने। तत्सर्वं त्वत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥ १२ ॥ शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन्स्तोत्रे संपत्तिरुच्चकैः। भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥१३॥

कृपा से ही है इस लिए यह शुभ (मन्त्र) जपना योग्यहै ॥१२॥ औरजोमनुष्य इस स्तोत्रका शनैः २ स्पष्ट पाठ करता है उसको सम्पूर्ण अतुल सम्पत्ति प्राप्त

होती है। इस लिए इसका प्रारंभ करना ही उचित है॥ १३ ॥ जिस भगवती के प्रसाद से ऐश्वर्य, सौभाग्य आरोग्य और संपदाएँ प्राप्त होती हैं तथा शत्रुओंकी हानि और मोक्ष की प्राप्ति होती है उसकी मनुष्य क्यों न स्तुति करें अर्थात्

ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसंपदः । शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥ १४ ॥

अवश्य ही स्तुति करेंगे ॥ १४ ॥

इति भगवत्याः कीलकं स्तोत्रं समाप्तम् ॥ ३ ॥

T

ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टप् छन्दांसि श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः ऐंबीजम् ॥ ह्रीं शक्तिः ॥ क्लीं कीलकम् ॥ श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥ ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुपछन्दोभ्यो नमः मुखे ॥ महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः हृदि ॥ ऐं बीजाय नमः गुह्ये ॥ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ॥ क्लीं कीलकाय नमो नाभौ ॥ इति मूलेन करौ संशोध्य ॥ ॐ ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ ऐं ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ एवं हृदयादि ॥ ततोक्षरन्यासः ॥ ॐ ऐं नमः शिखायाम् ॐ ह्रीं नमः दक्षिणनेत्रे ॐ क्लीं नमः वामनेत्रे ॐ चां नमः दक्षिणकर्णे ॥ ॐ मुं नमः वामकर्णे ॐ डां नमः दक्षिणनासायाम् ॥ ॐ यैं नमः वामनासायाम् ॥ ॐ विं नमः मुखे ॐ च्चें नमः गुह्ये ॥ विन्यस्याष्टवारं मूलेन व्यापकं कुर्यात् ॥ ॐ ऐं प्राच्ये नमः॥

ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः ॥ ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः ॥ ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः ॥ ॐ विच्चे ईशान्यै नमः ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ॥ अथ ध्यानम् ॥ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघान् शूलं भुशुण्डीं शिरः शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ॥ नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवेमहाकालिकां ॥ यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥१॥ अक्षस्रक्परशु गदेषु कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ॥ शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ॥ गौरीदेहसमुद्भवां त्रिनयनामाधारभूतां महापूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजेच्छुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥३॥ अष्टोत्तरशतसंख्यया मन्त्रराजं जपेत् ॥ इति नवार्णविधिः ॥

अथ तंत्रोक्तं रात्रिसूक्तम् ।

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥ निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥१॥ब्रह्मोवाच ॥त्वं स्वाहात्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारःस्वरात्मिका॥सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिकास्थिता ॥ २ ॥ अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चा र्या विशेषतः। त्वमेव संध्या सावित्री त्वंदेवि जननी परा ॥३॥त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥ त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥ ४ ॥ विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥ तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥५॥ महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥ महामोहा च भवतीमहादेवी महासुरी ॥ ६ ॥ प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रि श्च दारुणा ॥७॥ त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥ लज्जापु- ष्टिस्तथातुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥८॥ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥ शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ ९ ॥ सौम्यासौम्य

तराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥ परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥१०॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥ तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥११॥ यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ॥सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥१२॥विष्णुश्शरीरग्रहणमहमीशान एव च॥कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कःस्तोतुं शक्तिमान्भवेत् ॥१३॥सा त्वमित्थंप्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥ मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥१४॥ प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥ बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥१५॥ इति रात्रिसूक्तम्॥

अथ सप्तशतीन्यासः ।

अथ प्रथममध्यमोत्तमचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः ॥ श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि ॥ नन्दाशाकंभरीभीमाःशक्तयः रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि ॥ अग्निवायुसूर्यास्तत्वानि ऋग्यजुःसामवेदाध्यानानि ॥ सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थं

जपे विनियोगः ॥ तत्रादौ न्यासाः ॥ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा॥ शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा ॥ अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ॥ घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ तर्जनीभ्यां नमः ॥प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ॥ भ्रामणेनात्म शूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ मध्यमाभ्यां नम॥ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ॥ यानिचात्यर्थघोराणि तैरक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ अनामिकाभ्यां नमः खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ॥ करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ॥ भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोस्तुते । करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ एवंहृदयादि ॥ खड्गिनी शूलिनी घोरा० हृदयाय नमः ॥ शूलेन पाहिनो देवि० शिरसे स्वाहा ॥ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च० शिखायै वषट ॥ सौम्यानि यानि रूपाणि० कवचाय हुम् । खड्गशूलगदादीनि० नेत्रत्रयाय वौषट ॥ सर्वस्वरूपे सर्वेशे० अस्त्राय फट ॥ इति न्यासः ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! सावर्णि नाम जो सूर्यके पुत्र अष्टम मनु कहलाते हैं उनकी उत्पत्ति की कथा विस्तारपूर्वक मैं कहता हूँ सुनो ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच । सावर्णिःसूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः । निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम ॥ १ महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः । स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥ २ ॥ स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वञ्चैत्रवंशसमुद्भवः । सुरथो नाम राजाऽभू

अर्थात् जिस प्रकार महामाया के प्रभाव से मन्वन्तर के स्वामी सूर्यके पुत्र सावर्णि हुए उसका हाल सुनो ॥ २ ॥ पहले स्वारोचिष मन्वन्तर में राजा चैत्रके वंशमें

सुरथ पृथ्वीमण्डल के राजा हुए ॥ ३ ॥ वह राजा अपनी प्रजाको पुत्र के सदृश पालन करता था। उसी समय कोलाविध्वंसी नाम के राजा उनके शत्रु होकर उनके राज्य पर चढ़ आये ॥ ४ ॥ तब महाराज सुरथ और उन कोलाविध्वंसी राजाओं में भयंकर युद्ध हुआ। यद्यपि राजा सुरथ सब प्रकार बली थे तब

त्समस्ते क्षितिमंडले ॥ ३ ॥ तस्य पालयतःसम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥ ४ ॥ तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदंडिनः

भी इनके शत्रु कोलाविध्वंसी लोगोंने इनका राज्य छीनकर अपने वशमें कर लिया [कोला एक दूसरे स्थान का नाम है जो सुरथकी दूसरी राजधानी थी उसको कई एक राजाओं ने बिगाड़ कर अपने आधीन कर लिया इस कारण से उन

लोगों का नाम कोलाविध्वंसी हुआ] ॥५॥ तब सुरथ हारमानकर वहांसे अपनी राजधानी में लौट आया और अपने देशही भर का राज्य करने लगा। परन्तु

न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥५॥ ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्। आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ६ ॥ अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः। कोशो बलञ्चापहृतन्तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ७ ॥ ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।

वहां भी उन प्रबल शत्रुओंने महाराज सुरथ को घेर लिया ॥ ६ ॥ तब इनके दुष्ट मन्त्री और अधिकारियों ने इनको असमर्थ समझ कर इनकी राज्य सम्पत्ति और सेना सब अपने आधीन कर लिया ॥ ७ ॥ तब महाराज सुरथ लज्जित

होकर शिकार के बहाने घोड़े पर सवार होकर अकेले दुर्गम वनको चला गया ॥ ८ ॥ उस शान्त वनमें पशु, पक्षी, मुनि और उनके शिष्यों से शोभायमान

एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ८ ॥ स तत्रा-श्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः । प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥ ९ ॥ तस्थौ कञ्चित्सकालञ्च मुनिना तेन सत्कृतः । इतश्चेतश्च विचरंस्त स्मिन्मुनि वराश्रमे ॥१०॥ सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतन ।

मेधस नामक द्विजोत्तम के आश्रम को देखा ॥ ९ ॥ और उस आश्रम मे राजा सुरथ जाकर घूमने लगा, मुनिने राजा को देखकर उनका बड़ा सत्कार किया और मुनि के सत्कार करने से राजा कुछ दिन वहाँ ठहर गया ॥ १० ॥

एक दिन राजा माया में फँसकर अपने नगर और प्रजा का स्मरण करके सोचने लगा कि मैं अपने नगर को जो मेरे पुरखों का बसाया हुआ था–छोड़

मत्पूर्वैः पालितम्पूर्वम्मया हीनंपुरं हि तत् । मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ॥ ११ ॥ न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदा मद । ममवैरिवशं यातःकान्भोगानुपलप्स्यते ॥ १२ ॥ ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः । अनुवृत्तिं ध्रुवन्तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृ-

कर चला आया अब नहीं मालूम कि मेरे पापी नोकर चाकर मेरा प्रजाकापालन न्यायपूर्वक करते हैं या नहीं ॥ ११ ॥ और यह भी नहीं जाना जाता कि मेरे मत्त हाथी की क्या दशा है ॥ १२ ॥ और जो लोग रोज रोज़ मेरे पास रह कर

धन भोजनादि मुझसे पाते थे वे लोग अब अपनी जीविकाके वास्ते दूसरे राजाओं की सेवा करते होंगे या नहीं ॥ १३ ॥ और जिस खजाने को मैंने बड़े परिश्रम

ताम् ॥ १३ ॥ असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् । साञ्चतः सोऽगतद्दुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ॥ १४ ॥ एतच्चान्यच्च सततञ्चिन्तयामास पार्थिवः । तत्र विप्राश्रमाभ्यासे वैश्यमेकं ददर्श सः ॥ १५ ॥ स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र क । सशोक इव कस्मात्त्वं

से जमा किया था उस अर्थराशिको मेरे नौकर चाकर निरर्थक और अनावश्यक कामों में व्यय करके नष्ट करते होंगे ॥ १४ ॥ इन्हीं सब बातों को राजा सोच रहा था कि इतनेमें उसी मुनिके आश्रमके पास राजाने एक बनियाँको देखा ॥ १५ ॥ और

उससे पूछा कि तुम कौन हो और किस लिए आये हो और क्यों उदास हो॥१६॥ प्रेम युक्त राजाकी बात सुनकर वह वैश्य बड़ी नम्रता से राजाको प्रणाम करके

दुर्मना इव लक्ष्यसे ॥ १६ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् । प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ १७ ॥ वैश्य उवाच ॥ समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले । पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ॥ १८ ॥ विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे

बोला कि ।१७।मेरा नाम समाधि है।मैं जातिका वैश्य धनीका पुत्रहूँ और मेरे दुष्ट स्त्री पुत्रोंने मेरे धन पर लोभ कर मुझको घर से निकाल दिया॥१८॥क्यों कि स्त्री और पुत्र ने मुझे निर्धन करके निकाल दिया है इस कारण मैं दुःखी होकर इस

जङ्गल में चला आया। भाई बन्धुओंने भी मुझे त्याग दिया ॥१६॥ अब मैं तो इस वनमें हूँ और मुझको अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धुओं के कुशल की कुछ

धनम्। वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः॥१६॥ सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्। प्रवृत्तिं स्वजनानाञ्च दाराणाञ्चात्र संस्थितः ॥ २० ॥ किन्नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किन्नु साम्प्रतम्। कथन्ते किन्नु सद्वृत्ताः दुर्वृत्ताः किन्नु मे सुताः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥

मालूम नहीं है कि ॥ २० ॥ वे लोग अपने घरमें कुशलपूर्वक हैं या नहीं और यह भी नहीं जानता कि मेरे लड़के अच्छा काम करते हैं या नहीं ॥ २१ ॥ समाधि से यह बात सुनकर राजा सुरथ बोला कि तेरी लालची स्त्री और दुष्ट-

T

पुत्रादिकों ने तेरा सब धन लेकर तुझे घर से निकाल दिया तब फिर उन लोगों पर प्रेम क्यों करता है ॥२२॥ वैश्य ने कहा कि हे महाराज ! आपका कहना सब

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः । तेषु किं भवतःस्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥ २२ ॥ वैश्य उवाच ॥ एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः । किंकरोमि न बध्नाति मम निष्ठुरताम्मनः ॥ २३ ॥ यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः । पतिःस्वजन-

सत्य है परन्तु मैं क्या करूं, मेरा जी इन के विषय में निष्ठुर नहीं होता ॥२३॥ जिस पुत्र ने पिता का प्रेम छोड़कर, स्त्री ने पतिप्रेम छोड़कर और भाइयों ने

भ्रातृप्रेम छोड़कर धनके लोभसे मुझे निकाल दिया मेरा मन उनमेंभी स्नेह करता है ॥२४॥ हे महामते! यह कैसी बातहै कि मैं जानता हुआभी अनजान होरहा हूँ कि जिन भाई बन्धुओं ने शत्रुता की उनमें मेरा मन नाता ढूँढने चला है

हार्दञ्च हार्द्दितेष्वेव मे मनः ॥ २४ ॥ किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते। यत्प्रेमप्रवणञ्चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ॥ २५ ॥ तेषाङ्कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यञ्च जायते। करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु

॥ २५ ॥ और उन लोगों के बिना देखे शोच से लम्बी साँसें निकलती हैं और जो में उदासी बनी रहतीहै। हे महाराज! मैं क्या करूं कि जिसमें मेरा चित्त इन

लोगोंको प्रीति छोड़कर निष्ठर हो जाय ॥ २६ ॥ मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम ! इसके बाद वह समाधि वैश्य और सुरथ मेधा ऋषिके पास गये२७ और वहाँ जाकर मुनिको न्यायपूर्वक प्रणाम करके राजा और वैश्य ने बैठ

निष्ठुरम् ॥ २६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तौ सहितौ विप्र तम्मुनिं समुपस्थितौ । समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ॥२७॥ कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हन्तेन संविदम् । उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥२८॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छा-

कर कुछ कथावार्त्ता कहना आरम्भ किया ॥२८॥ राजा सुरथने ऋषिसे कहा कि हे भगवन् ! आपसे एक सन्देह की बात पूछता हूँ कि मेरा चित्त मेरे वशमें नहीं

है इस वास्ते मुझको दु:ख होता है ॥ २६ ॥ और वह यह कि मुझे अपना राज्य नष्ट होने पर भी नौकर, चाकर, हाथी, घोड़ा, असबाव, खज़ाना, आदिमें बहुत ममता रहता है यद्यपि मैं जानता हूं कि अब मैं इन सबसे पृथक् हो गया

म्येकं वदस्व तत् । दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ॥२६॥ ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि। जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ॥ ३० ॥ अयञ्च निष्कृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः । स्वजनेन च

हूँ तो भी अज्ञानी के समान इन सबमें मेरा जी ललचाता है ॥३०॥ और यह जो मेरे साथ वैश्य है इसको भी इसके बेटे, स्त्री और नौकर, भाई तथा बन्धुओंने इसका धन लेकर घरसे निकाल दिया परन्तु इसका चित्त उनकी प्रीति से पृथक्

T

नहीं होता ॥ ३१ ॥ इसी तरह मैं और यह वैश्य दोनों इस बातसे बहुत दुःखी हो रहे हैं कि दोषको देखकर भी उन सबकी ममता हमलोगों के जी से नहीं जाती ॥ ३२ ॥ हे महाभाग ! आप बतलाइये कि किस सबब से हम लोगों को

सन्त्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ॥ ३१ ॥ एवमेष तथाऽहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ । दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ॥ ३२ ॥ तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि । ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विष-

ज्ञान रहते भी मोह है और जान बूझकर अन्धोंकी भाँति मूर्खता है ॥ ३३ ॥ महाराज सुरथका यह प्रश्न सुनकर मेधा ऋषि बोले कि हे महाराज ! संसार के

माया प्रपञ्च समझने में सब किसी को ज्ञान है और यह विषय भी सब किसी का अलग अलग है ॥ ३४ ॥ क्योंकि कितने जानवर दिनमें अन्धे हैं और कितने रात्रि में अन्धे हैं और कितनों को दिन रात बराबर सूझता है और कितनों

यगोचरे। विषयाश्च महाभाग यान्ति चैवं पृथक् पृथक् ॥ ३४ ॥ दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथा परे॥ केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥ ३५ ॥ ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किन्तु ते न हि केवलम्। यतो हि ज्ञानिनस्सर्वे पशुपक्षिमृगादयः॥ ३६ ॥ ज्ञानञ्च तन्म-

को कुछ नहीं सूझता ॥ ३५ ॥ केवल मनुष्य ही को ज्ञान नहीं किन्तु पशु और पक्षी को भी ज्ञान होता है ॥ ३६ ॥ जो ज्ञान पशु पक्षी को है वह ज्ञान मनुष्य

T

को भी है इस कारण दोनों बराबर हैं ॥ ३७ ॥ देखे ज्ञान रहते भी पक्षी स्वयं भूखसे पीड़ित होकर भी अपना आहार बच्चों को खिला देते हैं ॥ ३८॥ हे महाराज ! मनुष्य लोग भी अपने उपकारकी आशा पर अपने लड़कों को पालते

नुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् । मनुष्याणाञ्च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ॥ ३७ ॥ ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु । कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ॥३८॥ मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान्प्रति । लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किन्न पश्यसि ॥३९॥

हैं । क्या तुम नहीं देखते हो कि सब मनुष्यों को ज्ञान है ॥ ३९ ॥ पर तो भी संसारके पालनेवाले परमेश्वर की जो महामाया है उसके प्रभाव से मनुष्य लोग

घिर कर मोहके कुएँ में गिर पड़ते हैं अथवा गिराये जाते हैं ॥४०॥महामाया के ऐसे प्रभाव में सन्देह न करना चाहिये क्योंकि यह योगनिद्रा महामाया जगत्पति

तथापि ममतावर्त्तै मोहगर्त्तै निपातिताः । महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा ॥ ४० ॥ तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्राजगत्पतेः । महामाया हरेश्चैषा यया संमोह्यते जगत् ॥ ४१ ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ ४२ ॥ तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।

श्रीविष्णु भगवान् की है जिनकी माया से जगत् मोहित है ॥ ४१ ॥ और यह महामाया भगवती देवी ज्ञानियोंके चित्तको भी खींचकर मोहमें फँसा देती है॥४२॥

और वही भगवती इस चराचर जगत्को उत्पन्न करती है और वही भगवती प्रसन्न होकर और वरदान देकर मनुष्यों को मुक्ति भी देती है ॥ ४३ ॥ और वह भगवती परम विद्याका स्वरूप और मुक्तिका कारण और सनातनी हैं और वह भग-

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणाम्भवति मुक्तये ॥४३॥ सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी। संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ४४ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्का हि सा देवी महामायेति याम्भवान्। ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्या

वती संसारके बन्धनका कारण और ईश्वरोंकी ईश्वरी है ॥४४॥ यह सुनकर राजा सुरथ बोले कि हे भगवन्! वह कौन है? जिनको आप महामाया कहते हैं और किस

तरह उनकी उत्पत्ति है और क्या उनका चरित्र है॥४५॥मैं उनका प्रभाव स्वरूप और उत्पत्ति आपसे सुनना चाहता हूं॥४६॥ ऋषि बोलेकि यद्यपि वह भगवती नित्या और जगन्मूर्ति है,यह सम्पूर्ण जगत् उन्हींका बनाया हुआ है तथापि उनकी उत्पत्ति

श्च किं द्विज॥४५॥यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भ-वा। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर॥४६॥ऋषि-रुवाच॥ नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्। तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयताम्मम ॥ ४७ ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा । उत्पन्नेति तदा

बहुत तरहसे है संक्षेपसे मैं कहताहूँ सुनो॥४७॥जब देवतालोगोंके कार्य्यसिद्ध करनेके

वास्ते लोकमें उत्पन्न होती हैं परन्तु तो भी वे नित्या कहलाती हैं ॥ ४८ ॥ कल्प निद्रा में प्राप्त हुये यानी सोगये ॥ ४९ ॥ तब उनके कानके मैलसे दो असुर

लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥ ४८ ॥ योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते । आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान्प्रभुः ॥ ४९ ॥ तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ । विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुम्ब्रह्माणमुद्यतौ ॥५०॥ स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः।

महाघोर मधु और कैटभ नामके उत्पन्न होकर ब्रह्माके मारनेके वास्ते संनद्ध हुये ॥५०॥ तब ब्रह्मा ने जो विष्णु भगवान्के नाभि कमल में स्थित थे उन दोनों उग्र

असुरों को देखा और जनार्दन विष्णु भगवान् को सोया हुआ देखकर ॥५१॥ उनके जगाने के वास्ते विष्णु भगवान् के नेत्रमें जो योगनिद्रा वास किये हुये थी उन्हीं की स्तुति जो लगाकर करने लगे ॥ ५२ ॥ अर्थात् जो भगवती योगनिद्रा

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तञ्च जनार्दनम् ॥ ५१ ॥ तुष्टाव योगनिद्रान्तामेकाग्रहृदयस्थितः । विबोधनार्थाय हरेर्हरि नेत्रकृतालयाम् ॥ ५२ ॥ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् । निद्राम्भगवतीं विष्णोरतुलान्तेजसः प्रभुः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥त्वं स्वाहा त्वं

विश्वेश्वरी संसार की स्थिति और संहार करनेवाली और अतुल तेज भगवान् विष्णुको शक्ति है ॥५३॥ ब्रह्माजो बोले हेभगवती ! स्वाहा स्वधा और वषट्कार

T

स्वरूपिणी आपही हैं और स्वरस्वरूपिणी और सुधा आपही हैं और नित्य अक्षरों में तीन तरहसे मात्रास्वरूपिणी होकर आप विराजमान हैं और ॥५४॥ अर्धमात्रारूपिणी होकर आप स्थित रहती हैं और आप नित्या हैं जिनको विशेष

स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका । सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता॥५४॥अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः । त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥५५॥ त्वयैतद्धार्यते सर्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् । त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा

पूर्वक कोई उच्चारण नहीं कर सकता है वे आपही हैं और सावित्री और हे देवि! सबकी परमजननी आपही हैं ॥ ५५ ॥ सब जगत्की धारण सृष्टि और पालन

करनेवाली तथा अन्तमें सबका नाश करनेवालीभी आपही हैं॥५६॥और हे जगन्मये आप संसारकी सृष्टिरूपा और पालनमें स्थितिरूपा और फिर इसीतरह नाशकरनेमें संहाररूपा हैं ॥ ५७ ॥ महाविद्या, महामेधा, महामोहा, भगवती, महादेवी, और

॥ ५६ ॥ विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने। तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥ ५७ ॥ महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः । महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥ ५८॥ प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी । कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च

महासुरी आपही हैं ॥५८॥ फिर सब किसी की त्रिगुणमयी प्रकृति और दारु-

गा अर्थात् भयावनी कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि आपही हैं ॥५६॥ तथा श्री और ईश्वरी अर्थात् लज्जा, बीज, बुद्धि, बोध, लज्जा [लाज] और तुष्टि और शान्ति भी आपही हैं ॥ ६० ॥ और खड्गिनी और शूलिनी और घोरा

दारुणा ॥५९॥ त्वं श्रीस्त्वमीश्वरीस्त्वंह्रीस्त्वंबुद्धिर्बोधल-क्षणा। लज्जापुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिःक्षान्तिरेव च॥६० खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा। शंखिनी चापिनी बाणा भुशुण्डी परिघायुधा ॥ ६१॥ सौम्या सौ-

अर्थात् एक हाथ में मुण्ड धारण किये भयङ्करी हो और गदिनी और शङ्खिनी और चापिनी और बाण भुशुण्डी और परिघ ये सब आयुध महाकालीरूप धारण करके दशों भुजाओं में आप रखती हैं ॥ ६१ ॥ और आप सौम्या हैं और सौम्यतरा हैं और सब सौम्यों से अतीव सुन्दरी हैं और सबसे परे और परमा

और परमपरमेश्वरी हैं इससे आप परमेश्वरी कहलाती हैं ॥६२॥ और हे अखिलात्मिके ! जहाँ पर जो कुछ सत् या असत् वस्तु है उनमें जो शक्ति है वह आपही हैं तो फिर आप की स्तुति कहाँ तक की जाय ॥ ३॥ और जिस महा

म्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी । परापराणाम्परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥६२॥ यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके । तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥ ६३ ॥ यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् । सोऽपि निद्रावशन्नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः

माया शक्तिसे विष्णु भगवान् को भी जो कि जगत् की उत्पत्ति पालन और नाश करते हैं इस समय निद्राके वश कराया है तब तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता है

T

॥ ६४ ॥ क्योंकि विष्णु और हम और महादेव आपही की आज्ञासे शरीरधारण करते हैं तो आपकी स्तुति करने की किसमें सामर्थ्य है ॥ ६५ ॥ और हे देवि ! इस तरह आप अपनेही उदार भाव से स्तुत होकर हे महामाये ! आप इन

॥ ६४ ॥ विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च । कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥६५॥ सा त्वमित्थम्प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता । मोहयतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥६६॥ प्रबोधञ्च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु । बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ

दोनों दुराधर्ष मधु कैटभ असुरों को मोहमें प्राप्त कर दीजिये ॥६६॥ और आप शीघ्रही जगत्स्वामी अच्युत भगवान् विष्णु को जगाकर इन महाअसुरों के मारने

के लिये तैयार कीजिये ॥ ६७ ॥ ऋषि कहते हैं कि हे महाराज सुरथ! इस तरह उस समय विष्णु भगवान् के जगाने और मधु कैटभ असुर के मारने के लिये ब्रह्माजी ने जब तामसी महाकाली की स्तुति की ॥ ६८ ॥ तब वह महामाया

महासुरौ ॥ ६७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा । विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधु कैटभौ ॥६८॥ नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ६९ ॥ उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः। एकार्णवेऽहि

विष्णु भगवान् के नेत्र, नासिका, बाहु, हृदय और छाती से निकल कर ब्रह्माजी को दर्शन देने को बाहर खड़ी होगई ॥ ६९ ॥ योगनिद्रा महामाया के बाहर निक-

लने से विष्णु भगवान् शेषशय्या से उठ बैठे और उस एकार्णव में उन दोनों असुरों को देखा कि ॥७०॥ वे दोनों दुरात्मा महाबली पराक्रमी असुर मधु कैटभ क्रोध से आँखें लाल किये हुए ब्रह्माजी को मारने पर तैयार हैं ॥ ७१ ॥ तब

शयनात्ततः स ददृशे च तौ॥७०॥ मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ । क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ॥७१॥ समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः पंचवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥ ७२ ॥ तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ । उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो

भगवान् विष्णु उन दोनों असुरों के साथ बाहुयुद्ध करने लगे और वह बाहुयुद्ध पाँचहजार वर्ष तक होता रहा ॥७२॥ तब वे मधु कैटभ महामाया की माया से

मोहित होकर केशव भगवान् से बोले कि हम दोनों तुम्हारे इस भयङ्कर युद्ध से बहुत प्रसन्न हुए, अबतुम हमसे वर माँगो ॥७३॥ विष्णु भगवान् ने कहा कि जो तुम दोनों प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हो तो मैं यही वरदान चाहता हूँ

व्रियतामिति केशवम् ॥७३॥ भगवानुवाच ॥ भवतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि । किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतम्मम ॥७४॥ ऋषिरुवाच ॥ वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् । विलोक्य ताभ्यां गदितो भग-

कि तुम दोनों मेरे हाथसे मारे जाओ ॥ ७४ ॥ मेधा ऋषि कहते हैं कि हे राजा सुरथ! इस तरह मधु कैटभ विष्णु भगवान् के बहकाने में आकर और सब

जगत् को जलमय देखकर विष्णु भगवान् से बोले कि एवमस्तु, पर जहाँ जल न हो वहाँ पर हमको मारो ॥ ७५ ॥ ऋषि कहते हैं कि इस तरह मधु कैटभ के कहने पर उस शंखचक्रगदाधारी विष्णु भगवान् ने बहुत अच्छा कहकर अपनी

वान्कमलेक्षणः । आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ ७५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता । कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥ ७६ ॥ एवमेषा समुत्पन्ना

जाँघ को बिना पानी की जगह समझ कर उसका माथा उसी जँघ पर रखकर सुदर्शन चक्रसे काटडाला । विष्णु भगवान्का शरीर पञ्चतत्वसे नहीं बना है शुद्ध

मायाकृत है ॥ ७६ ॥ इस तरह वह दशभुजावाली महाकाली उत्पन्न नहीं है जिनकी स्तुति ब्रह्माजी ने की है अब फिर उनका प्रभाव मैं कहता हूँ सुनो ॥ ७७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् । प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ ७७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच ॥ देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतम्पुरा ।

मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! पूर्वकाल में जब असुरोंका स्वामी महिषासुर था और देवताओं के स्वामी इन्द्र थे उस समय देवताओं असुरों में

सौ वर्षतक युद्ध हुआ ॥ १ ॥ उस युद्ध में बड़े बड़े बली राक्षसों ने सम्पूर्ण देवताओं को जीत लिया तब महिषासुर आप इन्द्र हुआ ॥ २ ॥ तब देवता लोग पराजित होकर ब्रह्मा के पास गये और फिर ब्रह्माजी को आगे कर

महिषेऽसुराणामधिपे देवानाञ्च पुरन्दरे ॥ १ तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् । जित्वा च सकलान्देवा न्निन्द्रोऽभून्महिषासुरः॥२॥ ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् । पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ३ ॥ यथावृत्तन्तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् । त्रिदशाः

जहाँ विष्णु भगवान् और महादेवजी थे वहाँ गये ॥ ३॥ और उनसे युद्धका सब वृत्तान्त जिस तरह महिषासुर विजय पाकर इन्द्र हुआ था वह सब देवताओं ने

कह सुनाया ॥४॥ और कहा कि हे भगवन् ! सूर्य, अग्नि, इन्द्र, वायु, चन्द्रमा यम और वरुणादि सब देवताओं का अधिकार महिषासुर आप कर रहा है ॥ ५ ॥ और सब देवताओं को उसने वहाँ से निकाल दिया । अब देवता लोग

कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥४॥ सूर्येन्द्राग्नन्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च । अन्येषाञ्चाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ५ ॥ स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि । विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ६ ॥ एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् । शरणञ्च

मनुष्यों की तरह पृथ्वीमें मारे मारे फिरते हैं॥ ६ ॥हे महाराज ! महिषासुरके उत्पात का हाल विस्तारपूर्वक हमने आपको कह सुनाया और हमलोग आपको शरणमें

हैं अब जिसमें वह राक्षस मारा जाय सो कीजिये ॥७॥ देवताओंका यह वचन सुनकर महादेवजी और विष्णु भगवान् का मुँह क्रोध से तमतमा गया ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् उसी अवस्था में भगवान् विष्णुके मुखसे एक महातेज निकला फिर

प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ७ ॥ इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः। चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ८ ॥ ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः। निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणश्श-

उसी तरह ब्रह्माजी और महादेवजी के मुख से भी निकला ॥९॥ फिर इन्द्रादि जितने देवता वहाँ पर थे उन सबके शरीर से भी जो तेज निकला वह सब इकट्ठा

हो गया ॥१०॥ फिर उस तेजको देवता लोग क्या देखते हैं कि वह तेज जलते हुए पहाड़के समान हो गया और उसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओं में छागई

ङ्करस्य च ॥ ९ ॥ अन्येषाञ्चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः । निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥१०॥ अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् । ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ ११ ॥ अतुलन्तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् । एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तं लोकत्रयं त्विषा ॥ १२ ॥ यदभूच्छाम्भवन्तेजस्तेनाजायत

॥ ११ ॥ फिर वही अतुल तेज जो सब देवताओं के अङ्ग से निकला था एक स्त्री का रूप बन गया ॥ १२ ॥ महादेवजी के तेजसे उसने उनका मुख और

यम के तेज से शिरके बाल और विष्णु भगवान् के तेज से उनकी भुजायें हुइ ॥ १३ ॥ और चन्द्रमा के तेजसे दोनों स्तन और इन्द्र के तेजसे शरीरका मध्य भाग हुआ और वरुणके तेज से जाँघ, उरू और पृथ्वीके तेज से नितम्ब

तन्मुखम् । याम्येन चाभवन्केशा बाहवो विष्णु तेजसा ॥ १३ ॥ सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् । वारुणेन च जंघोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ १४ ॥ ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्क तेजसा । वसूनाञ्च कराङ्गुल्य कौबेरेण च नासिका

हुआ ॥ १४ ॥ और ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण और सूर्यके तेज से चरणों की अँगुलियाँ हुईं और वसुओं के तेजसे दोनों हाथोंकी अगुलियाँ और कुबेर

के तेजसे उनकी नासिका हुई ॥ १५ ॥ और दक्षप्रजापतिके तेजसे सब दाँत और अग्निके तेजसे उनकी तीन आँखें हुईं ॥१६॥ और दोनों संध्याके तेज से उनकी दोनों भ्रुकुटि और वायुके तेजसे दोनों कान हुए, तात्पर्य यह है कि इसी तरह

॥ १५ ॥ तस्यास्तु दन्तास्सम्भूताः प्राजापत्येनतेजसा । नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥ १६ ॥ भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च । अन्येषाञ्चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ १७ ॥ ततस्समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ॥ तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महि

सब देवताओं के तेजसे वह महालक्ष्मी शिवा प्रगट हुई॥१७॥तत्पश्चात् सबदेवता लोग जो महिषासुर के त्रास से अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे उस तेजोराशि से

उत्पन्न महालक्ष्मी को देख कर अति हर्षित हुए ॥ १८ ॥ उस समय महादेवजी ने अपने शूल से एक दूसरा शूल भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने अपने चक्र से एक चक्र उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १९ ॥ और वरुण ने एक शङ्ख और

षार्हिताः ॥ १८ ॥ शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् । चक्रञ्च दत्तवान् कृष्णःसमुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ १९ ॥ शङ्खञ्च वरुणश्शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः । मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ २० ॥ वज्रमिन्द्रस्समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः । ददौ तस्यै

अग्नि ने अपना शक्ति और वायु ने धनुष और तीरों से भरे हुए दो तर्कस उनको दिये ॥ २० ॥ और देवताओं के पति इन्द्र ने वज्र से एक और ऐसा-

वत हाथो से उतार कर घण्टा महालक्ष्मी जी को दिया ॥ २१ ॥ और यमराज ने अपने कालदण्ड से एक दण्ड और वरुण ने फांस और दक्षप्रजापति ने अक्षमाला और ब्रह्माजी ने कमण्डलु दिया ॥ २२ ॥ और सूर्य ने उनके सम्पूर्ण

सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥२१॥ कालदण्डा-द्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ॥ प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥ २२॥ समस्तरोमकूपेषु निजर-श्मीन् दिवाकरः। कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥ २३ ॥ क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथा-

रोमकूपों में अपनी किरणों को भर दी और कालने खड्ग और एक स्वच्छ ढाल दिया ॥ २३ ॥ और क्षारसमुद्र ने एक बहुत अच्छा हार, दिव्याम्बर और दिव्य

चूड़ामणि अर्थात् शिरके भूषण के वास्ते रत्न दिया और दोनों कानों के कुण्डल और पहुँची ॥ २४ ॥ और अर्धचन्द्रमा के समान स्वच्छ ललाट के भूषण और बाहु में बिजायट और बाजूबन्द और दोनों चरणों में नूपुर और गले

म्बरे। चूडामणिन्तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥२४॥ अर्धचन्द्रन्तथा शुभ्रं केयूरान्सर्वबाहुषु । नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ २५ ॥ अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च । विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥ २६ ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथा

का उत्तम कण्ठा ॥ २५ ॥ और सब अँगुलियों में जड़ाऊ अँगूठी उनको विश्वकर्मा ने और निर्मल फरसा ॥ २६ ॥ और और भी अनेक भाँति के

अस्त्र शस्त्रादि और अभेद दंशन अर्थात् किसी हथियार से नहीं काटने योग्य बख्तर भी दिये शिर और गले में पहिरने के लिए निर्मल कमल की माला॥२७॥ और हाथ में रखने के लिए अति शोभायमान कमल उनको समुद्र ने दिया और

भेद्यञ्च दंशनम् । अम्लानपंकजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ २७॥ अदद्जलधिस्तस्यै पंकजञ्चातिशोभनम् । हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२८॥ ददावशून्यं सुरया पानपात्रन्धनाधिपः । शेषश्च सर्वना-

हिमवान् पर्वत ने हर तरह के रत्न और सवारी के लिये सिंह दिया ॥ २८ ॥ और कुबेर ने मद्यसे भरा हुआ पात्र दिया और शेषजी जो सब नागोंके पति हैं

T

और पृथ्वी को शिर पर उठाये हुये हैं। उन्हों ने रत्नजटित ॥ २६ ॥ नागहार दिया फिर वह देवी बहुत हथियारों और भूषणों से संयुक्त ॥ ३० ॥ हो कर

गेशो महामणिविभूषितम् ॥२६॥ नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथ्वीमिमाम्। अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायु-धैस्तथा ॥ ३० ॥ सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासम्मुहु-र्मुहुः। तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः॥३१॥ अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्। चुक्षुभुः स-

बारम्बार प्रसन्नता से बड़ी गर्जना करके उच्च स्वर से हँसी, उनके गर्जन से सम्पूर्ण लोक दहल गये और उनके महाशब्द से आकाश गूँज गया ॥ ३१ ॥ जिससे

सब लोक में हलचल मच गया और सातों समुद्र कांपने लगे ॥ ३२ ॥ और सारी पृथ्वी हिल गई पर्वत सब कम्पायमान हो गये यह देखकर देवता लोग हर्ष संयुक्त उस सिंहवाहिनी महालक्ष्मी से बोले कि हे देवि ! आप की जय हो ।

कलाः लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥३२॥ चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः । जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥ ३३ ॥ तुष्टुवुर्मुनयश्चैनाम्भक्तिनम्रा-त्ममूर्तयः । दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ३४

हमारे शत्रुओं को भय दीजिए ॥ ३३ ॥ इसी तरह मुनि लोग भी भक्तिपूर्वक देवी को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे और यह दशा देखकर तीनों लोकमें जितने राक्षस थे सब व्याकुल हो गए ॥ ३४ ॥ और सब राक्षस लोग अपने २

T

अस्त्र शस्त्र ले लेकर युद्ध करने के लिये उपस्थित हो गये और महिषासुर भी मारे क्रोध के आश्चर्य से घबराकर॥३५॥ सब असुरों को साथ लेकर जिस तरफ

सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः । आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥ ३५ ॥ अभ्यधावत तं शब्दमशेषैर सुरैर्वृतः । स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयान्त्विषा ॥ ३६ ॥ पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् । क्षोभिताशेषपातालाम् धनु

से गर्जने की आवाज आती थी, दौड़ा और वहाँ जाकर महालक्ष्मी को देखा कि उनकी ज्योति सम्पूर्ण लोकोंमें फैल रही है।॥२६॥ और उनके चलनेसे पृथ्वी झुक

गई है और उनके शिरके किरीट से सम्पूर्ण आकाश प्रकाशमान हो रहाहैं और उनके धनुष के खींचने को आवाज से सम्पूर्ण लोक और पाताल तक डोल रहे हैं॥३७॥

ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥ ३७ ॥ दिशो भुजसहस्रेण सम-न्ताद्व्याप्य संस्थिताम् । ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥ ३८ ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपित-दिगन्तरम् । महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः

और भगवती अपने हजारों भुजाओं से सब दिशाओं को व्याप्त करके विराज मान हो रही हैं ऐसा रूप उनका देखकर राक्षस लोग उनसे युद्ध करने लगे ॥३८॥ उस युद्धमें सब तरह के हथियार चलनेकी चमक से सब दिशायें प्रकाश

मान होरहो थो। उस समय महिषासुर के सेनापति चित्तुरनाम महाअसुरने भग वती से भयंकर युद्ध किया॥ ३९॥ और चामर नाम असुर भी बहुत से शूर वीर राक्षसों की चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर बहुत लड़ा और उदग्र नाम असुर

॥ ३९ ॥ युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः। रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥ ४० ॥ अयुध्यतायुतानाञ्च सहस्रेण महाहनुः। पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥ ४१ ॥ अयुतानां शतैः

साठ हजार रथ अपने साथ लेकर युद्ध करने के लिए आया॥४०॥ और महाहनु नामक असुर करोड़ सेना लेकर देवीके साथ लड़ा और असिलोमा नाम महा असुरने पांच करोड़ सेना लेकर युद्ध किया॥४१॥ और बाष्कल नाम असुर साठ

लाख असुर सेना लेकर रणमें आया और युद्ध किया और विडाल नाम असुर कितनेहीं हजार हाथीं और घोड़े ॥४२॥ और एक करोड़ रथ साथ लेकर आया

षड्भिर्वाष्कलो युयुधे रणे । गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥४२॥ वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत । बिडालाख्योऽयुतानाञ्च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥ ४३ ॥ युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः । अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृतः ॥ ४४ ॥ युयुधुस्सं

और युद्ध किया, निदान जब सब सेना उसकी समाप्त हो गई तो फिर पांच लाख रथ अपने साथ लेकर ॥ ४३ ॥ उस संग्राम में आया और युद्ध किया और भी उस युद्ध में दश २ हजार रथ हाथी और घोड़े साथ में लिये हुए ॥४४॥ कितने

T

असुरों ने देवी से युद्ध किया तदनन्तर कई करोड़ सहस्र रथ और हाथी ॥४५॥ और घोडे साथ लेकर उस रणमें महिषासुर आया और तोमर और भिन्दिपाल

युगे देव्या सह तत्र महासुराः । कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ ४५ ॥ हयानाञ्च वृतोयुद्धे तत्राभून्महिषासुरः । तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मु-सलैस्तथा ॥ ४६ ॥ युयुधुस्संयुगे देव्याः खड्गैः परशु-पट्टिशैः । केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथा-

और शक्ति और मुशल ॥ ४६ ॥ और खड्ग और फरसा और किरच इत्यादि हथियारों से भगवती के साथ लड़ने लगा अर्थात् कोई असुर तो शक्ति और कोई

फरसा इत्यादि चलाता था ॥ ४७ ॥ और भो नामी असुर लोग देवी के ऊपरं खडग इत्यादि चलाते थे परन्तु उस चण्डिका देवीने असुरों के हथियारोंको॥४८॥

परे ॥ ४७ ॥ देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः । सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥ ४८ ॥ लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी । अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥ ४९ ॥ मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी । सोपि क्रुद्धो धुत-

वेपरवाही के साथ खे । की तरह अपने हथियारों से काटकर खण्ड खण्ड कर डाला । तब देवता और ऋषि लोग आकर देवी जी को स्तुति करने लगे ॥४९॥ और देवी उन असुरों के अस्त्र शस्त्रको काटकर उन लोगोंके ऊपर अपने हथिया-

रों का वार करने लगे और उनका वाहन सिंह भी क्रोध से ॥५०॥ जिस तरह अग्नि चारों तरफ़ फैलकर जंगल को जलाकर क्षार कर देता है उसी तरह असु

सटो देव्या वाहनकेसरी ॥५०॥ चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः। निःश्वासान्मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥ ५१ ॥ त एव सद्यस्संभूताः गणाः शतसहस्रशः। युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥ ५२ ॥ नाशयन्तोऽसुरगणान्देवी शक्त्युपबृंहिताः। अवादयन्त

रोंकी सेना में वह सिंह विचरने लगा और असुरों को मार मार कर गिराने लगा और उस समय अम्बिका देवीकी स्वाँस से ॥ ५१ ॥ लाखों गण उत्पन्न हुए और वे लोग ॥ ५२ ॥ असुरों को मारने लगे देवी के प्रभाव से प्रसन्न हो कर सब

देवता लोग खुशी का नगाड़ा बजाने लगे कोई शंख और कोई ॥ ५३ ॥ उस रणके महोत्सव में मृदंग बजाते थे फरसा, भिन्दिपाल और तलवार, तेगा

पटहान् गणाः शंखांस्तथापरे ॥ ५३ ॥ मृदङ्गाश्च तथैवान्ये तस्मिन्युद्धमहोत्सवे । ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥ ५४ ॥ खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥ ५५॥ असुरान्भुवि पाशेन बद्ध्वा चा-

किंच इत्यादि से असुरोंके साथ युद्ध करने लगे तब देवीने त्रिशूल और गदा और बाणोंकी वृष्टि से ॥ ५४ ॥ और खड्ग इत्यादि से लाखों असुरों को मार डाला और कितनों को घण्टे के शब्द से मोहित कर गिरा दिया ॥ ५५ ॥ और

कितनों को पाश में बाँधकर खड्ग से काट डाला ॥ ५६ ॥ और असुरों को गदा से मार डाला और कितनों को उस गदा की मार से मार डाला और

न्यानकर्षयत्। केचिद्द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातै-स्तथापरे ॥५६॥ विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते। वेमुश्च केचिद्रुधिरम्मुशलेन भृशं हताः ॥ ५७ ॥ केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाश्शूलेन वक्षसि। निरन्तरा

कितने उस गदा की मार से पृथ्वी पर अचेत हो पड़े थे और कितने बारम्बार मुशलकी मार से रक्त वमन करते थे ॥५७॥ और कितने छाती में शूलके घाव लगने से और कितने बाणों के घाव लगने से उस रण के मध्य में मरे

पड़े थे ॥५८॥ और जो असुर लोग उस रण में सेनाके आगे चलते थे, वेलोग कितने तो बाणों के लगने से मर गये, और कितनों की भुजा कट गई और

शरौघेण कृताःकेचिद्रणाजिरे ॥ ५८ ॥ सेनानुकारिणः प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः । केषाञ्चिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥५९॥ शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्येविदारिताः । विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्याम्महासुराः ॥ ६० ॥ एकबाह्वक्षिचरणाःकेचिद्देव्या द्विधा कृताः ।

कितने का गला कट गया ॥ ५९ ॥ और कितनों का शिर कट कर गिर पड़ा, और कितने राक्षस लोग आधे धड़ से कट कर मर गये, और कितने जाँघ कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़े थे ॥ ६० ॥ और किसी की एक ही बाँह कट कर

गिरी पड़ी थी, और किसी की आँख ही फूट गई थी और किसी का एकही पाँव कट गया था, और किसीको देवीने काट कर आधा कर दिया था, और कितने शिर

छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ ६१ ॥ कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः । ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥ ६२ ॥ कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः । तिष्ठ

कट जाने पर भी गिरकर ॥ ६१ ॥ कबन्धसे हथियार लेकर देवीसे युद्ध करतेथे और उस युद्ध तूर्य (तुरही) कोई बाजे के स्वरको लयका आश्रयण कर नृत्य करतेथे ॥ ६२ ॥ और कितने असुरों के शिर तो कट गये थे परन्तु कबन्ध और खड्ग और

शक्ति, ऋष्टि (जिसके दोनों तरफ धार होती है) हाथ में लिए हुए तिष्ठ तिष्ठ कहते हुए भगवती से युद्ध करते थे ॥ ६३ ॥ जिस स्थान पर युद्ध हुआ था

तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥ ६३ ॥ पातितै-रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा । अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः॥६४॥ शोणितौघा महानद्यस्सद्यस्तत्र विसुस्रुवुः । मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम्

वह स्थान हाथी, घोड़ों, रथ और कटे हुए शिरों से भरा हुआ था ॥६४॥ हाथी और घोड़ों और असुरों के रुधिर से उस स्थान पर कई नदियां

वह निकलीं ॥ ६५ ॥ और जिस तरह सूखे तृण और काठ के ढेर को अग्नि बहुत जल्द जला देती है उस तरह अम्बिका देवी ने असुरों की सेना को एक क्षणमात्र में नाश कर डाला ॥ ६६ ॥ और जब वह

॥ ६५ ॥ क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका । निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ ६६ ॥ स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेशरः । शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ ६७ ॥ देव्या गणैश्च

सिंह देवी का वाहन शिर उठाकर गर्जता तो ऐसा जान पड़ता कि मानों उसकी गर्जना ने असुरों का प्राण निकाल लिया ॥ ६७ ॥ और देवी के गण

लोग जो असुरों से युद्ध करते थे उन के ऊपर देवता लोग प्रसन्न होकर पुष्प वृष्टि करते थे ॥ ६८ ॥

तैस्तत्र कृतं युद्धन्तथासुरैः । यथैषान्तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टि-मुचो दिवि ॥ ६८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-माहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुर-सैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मेधा ऋषि बोले कि हे महाराज सुरथ ! महिषासुर के सेनापति चिक्षुर नामक असुरने जब सेना को नाश होते हुए देखा तब बड़े क्रोध से वह अम्बिका

ऋषिरुवाच । निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः। सेनानीश्चिक्षुरःकोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥१॥ स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः । यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥ २ ॥ तस्य छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् । जघान तुरगान्बाणैर्यन्ता-

देवी के सामने युद्ध करने को आया ॥ १ ॥ और जैसे बादल मेरु पर्वत के ऊपर जल बर्षाता है वैसे ही वह असुर देवी के ऊपर अपने बाणों की वृष्टि करने लगा ॥ २ ॥ परन्तु देवी ने अपने बाणों से उसके बाणों को खेल की

तरह काट डाला और उस घोड़े को भी कोचवान् सहित मार डाला ॥ ३ ॥ और उसके धनुष और रथ की ध्वजा को भी काट डाला, और फिर अपने बाणों से उसके सारे शरीर को छेद डाला ॥ ४ ॥ परन्तु वह असुर धनुष,

रञ्चैव वाजिनाम् ॥ ३ ॥ चिच्छेद च धनुस्सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् । विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ४ ॥ सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्म्मधरोऽसुरः ॥ ५ ॥ सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ।

रथ, घोड़ा और सारथी के कट जाने पर भी तलवार लेकर देवी के सामने दौड़ा ॥ ५ ॥ और तीक्ष्ण खड्ग सिंह के शिर पर मार कर जल्दी से एक बार देवी को

बाँई भुजापर वार किया॥६॥ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! उसका वह खड्ग देवीकी भुजापर पड़ने से टुकड़े टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा तब असुर ने क्रोध से लाल नेत्र करके शूलको उठा लिया ॥ ७ ॥ और देवी पर चलाया तब वह शूल

आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ ६ ॥ तस्याः खड्गो भुजम्प्राप्य पफाल नृपनन्दन। ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥ ७ ॥ चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्याम्महासुरः । जाज्वल्यमानन्तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात ॥८॥ दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूल

आकाश में जाकर फिर वहां से सूर्य के समान चारों दिशाओं को प्रकाशमान करता हुआ भद्रकाली के ऊपर चला ॥८॥ तब भगवती ने उस शूल को अपनी

तरफ आते हुए देखकर अपने अपने शूल से उस शूल के सैकड़ों टुकड़े कर डाले और उस असुर को भी मार डाला ॥ ६ ॥ उस सेनापति के मरने के बाद चामर नाम असुर हाथी पर सवार होकर देवी से युद्ध करने के वास्ते सम्मुख

मम्मुञ्चत । तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥९॥ हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ । आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ १० ॥ सोपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् । हुंकाराभिहता-म्भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ ११ ॥ भग्नां शक्तिन्नि

आया ॥१०॥ और देवी के ऊपर शक्ति चलाई तब देवी ने उस शक्तिके तेजको भी उसी समय अपने शब्द से हरण करके पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ११ ॥ तब

चामर ने अपनी शक्ति को गिरी हुई देख कर क्रोध करके देवी पर शूल चलाया परन्तु देवी ने उसको भी अपने बाणों से काट डाला ॥ १२ ॥ और जो सिंह देवी का वाहन था वह कूद कर हाथी के मस्तक पर

पतितान् दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः । चिक्षेप चामरश्शूल-म्बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ १२ ॥ ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरेस्थितः । बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिद-शारिणा ॥ १३ ॥ युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागा-न्महीङ्गतौ । युयुधातेति संरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ १४ ॥

जिस अनुसार सवार था चढ़ गया और वहीं पर असुर से बाहुयुद्ध करने लगा ॥ १३ ॥ अन्त को वह असुर और सिंह दोनों लड़ते हुए पृथ्वी पर आये और गदा इत्यादि हथियार ले ले कर अत्यन्त दारुण युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

उस समय सिंहने कूद कर और सामने जाकर एक ऐसा तमाचा मारा कि उस असुरका शिर धड़से अलग हो आया ॥१५॥ तत्पश्चात् उदग्रनाम राक्षसने युद्ध किया उसको देवी ने शिला और वृक्ष इत्यादि लेकर ऐसा मारा कि वह भी मर

ततो वेगात्खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा । करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥ १५ ॥ उदग्रश्चरणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः । दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१६॥ देवीक्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।

गया । तब कराल नाम असुर आया उसको भी देवी ने दाँत और मुष्टि और चपेटों से मार डाला ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त उद्धत नाम असुर को गदासे मारा तब बाष्कल नाम असुर आया उसे भिन्दिपाल से मार डाला, फिर ताम्र और

अन्धक नामके असुर आये उनको भी बाणों से देवीने मार डाला, ॥१७॥ फिर उग्रास्य और उग्रवीर्य्य और महाहनु नाम असुरों को भी त्रिनेत्रा परमेश्वरी ने त्रिशूल से मार डाला ॥ १८ ॥ इसके बाद बिडाल नामक राक्षस आया उसका

व कलम्भिनन्दिपालेन बाणैस्ताम्रन्तथान्धकम् ॥ १७ ॥ उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् । त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ १८ ॥ बिडालस्यासिना कायात् पातयामास वै शिरः । दुर्द्धरन्दुर्मुखञ्चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १९ ॥ एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये म-

शिर भी देवी ने खड्ग से काटकर गिरा दिया अनन्तर दुर्द्धर और दुर्मुख नाम असुरों को बाणों से मार कर यमलोक भेज दिया ॥ १९ ॥ जब इस प्रकार से

महिषासुर की सेना नाश हो गई तब महिषासुर ने स्वयं महिष रूप धारण करके भगवती के गणों को मार कर व्याकुल कर दिया ॥ २० ॥ कितनों को तो तुण्ड अर्थात् थूथुन के प्रहार से और कितनों को टाप फेंक कर और कितनों को पूँछ

हिषासुरः । माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान्गणान् ॥२०॥ कांश्चित्तुण्ड प्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् लांगूलताडितांश्चन्याञ्छृङ्गाभ्यांश्च विदारितान् ॥ २१ ॥ वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च । निश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥ २३ ॥ निपात्य प्रथमानीक-

की मार से और कितनोंको सींगों से फाड़ कर मार डाला ॥२१॥ और कितनों को अपने शीघ्रगामी बेग से और कितनों को अपने शब्द से और कितनों को भ्रमण से और कितनों को श्वास के बेग से पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २२ ॥

इस तरह पहिले गणों को सेना को पृथ्वी पर गिरा दिया फिर अम्बिका देवी के सिंह को मारने के लिये वह महिषासुर दौड़ा तब तो अम्बिका देवी को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ और वह महापराक्रमी महिषासुर भी कोप करके

मभ्यधावत सोऽसुरः । सिंहं हन्तुम्महादेव्याः कोपञ्चक्रे ततोऽम्बिका ॥ २३ ॥ सोपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्ण-महीतलः । शृङ्गाभ्याम्पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ २४ ॥ वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।

अपने खुरों से पृथ्वी को खोदता हुआ और सींगों से बड़े बड़े ऊँचे पर्वतों को उखाड़ कर फेंकता हुआ गर्जा ॥ २४ ॥ और उसके पैंतरे की धमक से पृथ्वी फट गई और उसके पूँछके हिलाने से समुद्र उबल कर सब लोक को डुबाने

लगा ॥ २५ ॥ और उसके सींग के हिलने से घन अर्थात् बादल फट गया और उसके श्वास की प्रबल पवन चलने से सम्पूर्ण पर्वत उखड़ २ कर पृथ्वी के ऊपर

लांगूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ २५ ॥ धुत शृंगविभिन्नाश्च खंडं खंडं ययुघनाः । श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसो चलाः ॥ २६ ॥ इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् । दृष्ट्वा सा चंडिका कोपन्तद्वधाय तदाकरोत् ॥ २७ ॥ सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् । तत्याज माहिषं रूपं सोपि बद्धो

गिर पड़े ॥ २६ ॥ इस प्रकार क्रोध संयुक्त अग्निवत् महिषासुर को आते हुये देखकर चण्डिका देवी को अत्यन्त कोप उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ तब देवी ने पाश

[फाँसी] फेंक कर उस असुर को बाँध लिया तब उस असुर ने अपना महिष रूप छोड़ दिया ॥ २८ ॥ और शीघ्र ही सिंहका रूप धारण कर लिया तो अम्बिका देवी उसको मारनें का यत्न करने लगी तब वह पुरुष रूप होकर खड्ग हाथ

महामृधे ॥ २८ ॥ ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः। छिनत्ति तावत्पुरुषःखड्गपाणिरदृश्यत ॥ २९ ॥ तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः। तं खड्गचर्मणा सार्द्धं ततस्सोऽभून्महागजः ॥ ३० ॥ करेण च महा

में लेकर सन्मुख हुआ देवी यह देखकर ॥ २९ ॥ शीघ्रही ढाल तलवार के साथ उस पुरुषरूपी महिषासुर को अपने बाणों से मारने लगी तब उसने उस रूपको भी छोड़कर हाथी का रूप धारण कर लिया ॥ ३० ॥ और सूँड़ से देवी के

वाहन अर्थात् सिंह को खैंच लिया और गर्जा तब देवी ने अपने खड्गसे उसके सूँड़को काट डाला ॥ ३१ ॥ फिर उस असुर ने पहिले की तरह महिष रूप

सिंहं तं चकर्ष जगर्ज च । कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥ ३१ ॥ ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः । तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३२ ॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता चंडिका पानमुत्तमम् । पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥ ३३ ॥ ननर्द चा-

धारण कर लिया जिससे तीनों लोकके चराचर जीव भय भीत हो गये ॥ ३२ ॥ और वह जगन्मता चण्डिका देवी बारम्बार मदिरा पान करने लगी उस मदिरा पान से आँखें लाल हो गईं और जोर से हँसने लगी ॥ ३३ ॥ इधर वह असुर

भी अपने बलके घमराड से गर्जने लगा और सींगों से पहाड़ों को उठा उठा कर देवी के ऊपर फेंकने लगा ॥ ३४ ॥ पर चण्डिका ने उसके फेंके हुए पहाड़ों को अपने बाणों से चूर्ण कर डाला और शराब के नशे में मुँह लाल किये हुए

सुरः सोपि बलवीर्यमदोद्धतः । विषाणाभ्यां च चिक्षेप चंडिकां प्रति भूधरान् ॥ ३४ ॥ सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करः । उवाच तं मदोधूतं मुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ३५ ॥ देव्युवाच ॥ गर्ज गर्ज क्षणं मूढ़ मधु यावत् पिवाम्यहम् । मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु

महिषासुर से कहने लगी कि ॥ ३५ ॥ हे मूढ़ ! क्षणमात्र और तू गर्ज ले जब तक मैं मदिरा पान करती हूँ तदनन्तर इसी स्थान पर तुझे मारूँगी और तेरे

मारे जाने पर तुरन्तही देवता लोग गर्जेंगे ॥ ३६ ॥ मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! देवी इस तरह कह कर शीघ्रही उस महिषासुर के ऊपर कूद कर चढ़ गई और पाँव से दबा कर उसके कण्ठ में एक शूल मारा ॥३७॥ तब महिषासुर ने

देवताः ॥३६॥ ऋषिरुवाच ॥ एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढा तं महासुरम् । पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥ ३७ ॥ ततः सोपि पदाक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः । अर्धनिष्क्रान्त एवासीद्देव्या वीर्येण संवृतः॥३८॥

भगवती के पाँव तले दबा हुआ शूल लगने पर अपना महिष स्वरूप को छोड़ कर पुरुष रूप धारण कर ढाल तलवार लिये हुये मुख की ओर से निकलना चाहा, परन्तु देवीके अति पराक्रम से आधा शरीर निकला, समूचा निकलने न पाया ॥ ३८ ॥ उसी आधेही शरीर से वह महासुर युद्ध करने लगा तब उस

भगवती देवी ने एक बड़ी तलवार लेकर उसका शिर काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ३९ ॥ महिषासुर के वध होने पर बाकी जो दैत्यों की सेना थी वह सब

अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः । तया महासिना देव्या शिरश्छित्वा निपातितः ॥३९॥ ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यन्ननाश तत् । प्रहर्षञ्च परं जग्मुस्सकला देवता गणाः ॥४०॥ तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दि-

हाहाकार करती हुई समर से भाग गई यह देखकर सम्पूर्ण देवता परम हर्ष को प्राप्त हुये ॥४०॥ और सब देवता ऋषिलोग आनन्द संयुक्त भगवती की स्तुति

करने लगे और गन्धर्वपति लोग गाने और अप्सरा लोग नृत्य करने लगीं॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी माहात्म्ये
महिषासुर वधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

व्यैर्महर्षिभिः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरो-
गणाः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमा-
हात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऋषिरुवाच ॥ शक्रादयस्सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये त-

मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! जब देवीने उस अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा
महिषासुर को और उसकी सेना को मार डाला तब इन्द्रादि सब देवना शिर

और कन्धा झुकाए अतिहर्ष से सुन्दर रोमाञ्चित शरीरहो, मधुर वचनोंसे देवी की स्तुति इस प्रकार करने लगे कि॥१॥ हम सब लोग भक्ति पूर्वक उस अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं जो सब देवताओं के तेज स्वरूप हैं और उसने अपनी

स्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या । तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ १ ॥ देव्या यया ततमिदं गजदात्मशक्त्या निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या । तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताःस्म विदधातु शुभानि सा नः ॥२॥

शक्ति से इस सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न किया है और जिसको बड़े बड़े देव तथा ऋषि लोग पूजते हैं वह देवी हम लोगोंका कल्याण करे॥२॥ और जिनका अतुल

प्रभाव वर्णन करनेमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेवभी असमर्थ हैं वह चंडिका भगवती जगत् का पालन करे और दुष्टोंसे जो भय उत्पन्न होताहै उसके नाशसे वंचित रक्खैं। ३। हे देवि ! आप सुकृति लोगोंके घरमें लक्ष्मी होकर और पापियोंके घरमें दरिद्रा

यस्या प्रभावमतुलम्भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलम्बलञ्च। सा चण्डिकाऽखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिङ्करोतु ॥३॥ या श्रीः स्वयं सुकृतिनाम्भवनेष्वलक्ष्मीः पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः। श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा तां त्वां

बनकर और निर्मल चित्त वालों के चित्त में बुद्धि होकर और सज्जनों के हृदय में श्रद्धा और कुलीनों के हृदयमें लज्जा होकर स्थित रहती हैं आपको हमलोग

प्रणाम करते हैं, हे देवि ! इस संसार का आप पालन कीजिये ॥ ४ ॥ हे देवि ! आपके इस अचिन्त्यरूप और असुरों को क्षय करने वाले पराक्रम और समर में आपके चरित्र का हम सबों से किस प्रकार वर्णन हो सकता है ॥ ५ ॥

नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ४ ॥ किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत् किंचातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि। किं चाहवेषु चरितानि तवातियानि सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥५॥ हेतुस्समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा । सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदं-

आप अचिन्त्य हैं और सब जगत् का कारण और सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण संयुक्त हैं तो फिर राग इत्यादि से आपको कौन जान सकता है, विष्णु

और महादेव भी आपकी अपार महिमा को नहीं जान सकते क्योंकि सब जगत् आपके आश्रय और आपके अंश से पैदा है और आप सब विकारों से रहित हैं और आदि प्रकृति हैं ॥ ६ ॥ हे देवि ! यज्ञादि में आपही के नाम लेने

शभूतमव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥६॥ यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि । स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ७ ॥ यामुक्तिहेतुरविचिन्त्य-महाव्रता च अभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः। मोक्षा-

से देवता लोग और पितृकर्म में पितर लोग तृप्त होते हैं, आप ही का नाम स्वाहा और स्वधा है इसी लिये देवकर्ममें स्वाहा और पितृकर्म में स्वधा उच्चारण

करते हैं ॥ ७ ॥ हे देवि ! जोकि आप मुक्तिका कारण, अचिन्त्य हैं और दया, सत्य और ब्रह्मचर्य्य इत्यादि आपका साधन है और सम्पूर्ण दोषों को भञ्जन करनेवाली ब्रह्मज्ञान स्वरूपिणी विद्या आपही हैं इस लिये मोक्ष चाहने वाले जितेन्द्रिय मुनि लोग राग इत्यादि को छोड़ कर साक्षात् ब्रह्म आपही को जान

र्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ८ ॥ शब्दात्मिका सुबिमलर्ग्यजुषान्निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवताञ्च साम्नाम् । देवि त्रयी भगवती भवभावनाय वार्त्ता च सर्वजगताम्परमार्त्तिह-

कर सदा ध्यान किया करते हैं ॥ ८ ॥ हे देवि ! दोषों से रहित ऋचा वाली यजुर्वेद पठित मन्त्रों का और प्रणवयुक्त सुन्दर पद पाठवाली सामवेद पठित मंत्रोंको शब्दस्वरूपिणी तीनों वेदमयी आपही हैं और सब जगत् का संकट

हरने वाली और प्राणियों के जीवन के वास्ते कृषि और वाणिज्य, पशुपालन इत्यादि कर्म और वार्ता भी आपही हैं ॥ ६ ॥ हे देवि ! मेधा और सरस्वती सब शास्त्रों को जानने वाली और दुर्गम संसार सागर से ज्ञानरूपी असङ्ग नौका

न्त्री ॥९॥ मेधासि देवि विदिताऽखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गाः । श्रीकैटभारिहृदयैककृताधि-वासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ १० ॥ ईषत्सहासममलम्परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारिकनकोत्तम-कान्तिकान्तम् । अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषात्तथापि वक्त्रं

होकर पार करने वाली दुर्गा आप ही हैं क्योंकि प्राकृत नौका में खेलने वाले इत्या-दि का संग रहता है और विष्णु के हृदयमें रहने वाली लक्ष्मी और महादेवजी

T

के अर्धाङ्ग में रहने वाली गौरी आप ही हैं ॥ १० ॥ और हे देवि! बड़े आश्चर्य की बात है कि आपके मुसकुराते हुए मुखको जो पूर्णमासी के निर्मल चन्द्रमा और उत्तम सुवर्ण की ज्योति समान है देखने पर भी महिषासुर का चित्त समर में आसक्त न हुआ और उसका क्रोध शान्त न हुआ वह महिषासुर बड़ा शूर

विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः । प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ १२ ॥ देवि प्रसीद परमा भवती-

था जो आपके ऐसे मुखको, जो सम्पूर्ण जगत्को मोहने वाला है देख कर मोहित न हुआ ॥ ११ ॥ हे देवि! आपकी क्रोध संयुक्त तिरछी भौंहें और कराल

रूप और उदयकाल के लाल चन्द्रमा के समान मुख देख कर महिषासुर शीघ्र ही वहीं न मर गया यह और भी आश्चर्य की बात है क्योंकि क्रोधयुक्त यमको देखकर कौन जी सकता है ॥ १२ ॥ हे देवि! हम लोगों पर आप दयालु रहिये

भवाय सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि । विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतम्बलं सुविपुलम्महिषासुरस्य ॥ १३ ॥ ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः । धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाऽभ्युदयदा भवती प्रसन्ना

आप सदा दयावती हैं जब जब हम लोगों पर कष्ट पड़ता है तब तब आप हमारे दुखों को नाश कर देती हैं यह सब बातें हम यथोचित जानते हैं क्योंकि महिषा-

सुरको उसकी प्रबल सेनाके सहित इसीसमय नाश कर दिया है ॥१३॥ हे देवि ! जिन लोगों पर आप सदा दयालु और प्रसन्न रहती हैं वेही लोग धन्य हैं और उन्हींको महात्मा लोग बड़ा समझते हैं और उन्हीं लोगोंको सदा धन,यश,अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष प्राप्त होता है, उन्हींके स्त्री और नौकर चाकर सदा सन्तुष्ट

॥१४॥ धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति । स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती-प्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१५॥ दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिम-

रहते हैं ॥ १४ ॥ हे देवि ! जिन पुण्यात्मा लोगों पर आप दयालु रहती हैं वेही लोग आपकी दयाके सदा श्रद्धायुक्त होकर नैमित्तिक आदि,धर्म कर्म किया

करते हैं और आप ही की दयासे ये लोग धर्म कर्म करके स्वर्गको प्राप्त होते हैं और तीनों लोकमें फलदाता भी आप ही हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! जो कोई संकट में आपका स्मरण करता है उसका संकट निवारण कर देती हैं और जो लोग

तीव शुभां ददासि । दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ १६ ॥ एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखन्तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् । संग्राममृत्युमधिगम्य दिवम्प्रयान्तु मत्वेति नूनमहिता-

अच्छी दशामें आपका ध्यान करते हैं उनको आप अच्छी बुद्धि देतीहैं, दारिद्र्य दुःख और भयको नाश करनेवाली आपके समान कोई नहीं है और सबके उपकार करने के लिये सदा आप दयालु हो ॥ १६ ॥ हे देवि ! आपने इन्हीं दो

बातों के वास्ते दैत्यों को मारा है एक तो संसार को सुखहो दूसरे दैत्यलोग पापी नारकी हैं, संग्राम में मारे जाने से उनको स्वर्ग प्राप्त हो ॥ १७ ॥ हे देवि ! दैत्यलोग इस संग्राम में आपकी कोपदृष्टि से भस्म हो सकते थे, शस्त्र चलाने

न्थनिहन्सि देवि ॥१७॥ दृष्ट्वैव किन्न भवती प्रकरोति भस्म सर्वान्सुरानारषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् । लोकान्प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थम्मतिर्भवति तेष्वहितेषु साध्वी ॥ १८ ॥ खड्गप्रभा निकरविस्फुरणैस्तथो-

की कुछ आवश्यकता न थी परन्तु इस हेतुसे उन लोगों पर आपने शस्त्र चलाया कि आपका शस्त्र लगकर मरने से वे लोग निष्पाप हो कर स्वर्ग में जावें, इससे ज्ञात होता है कि दुष्टों पर भी आपको दया रहती है तो आपके भक्तोंके भाग्यका

बखान कहाँ तक किया जाय ॥ १८ ॥ हे देवि ! असुरोंकी आँखें जो आपके शूल और खड्ग की चमक से न फूटीं इसका यही कारण है कि आपके ललाट को वे लोग देखते रहे जिसमें अमृत किरणयुक्त अर्ध चन्द्रमा विराजमान हैं

ग्रैः शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोसुराणाम् । यन्नागताविलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननन्तव विलोकयतां तदेतत् ॥१६॥ दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः । वीर्यञ्च हन्तृहृतदेवपराक्रमाणां

॥ १६ ॥ हे देवि ! आपका यह गुण स्वभाव सिद्ध है जिससे पापियों का भी पापनाश होता है और आपका अचिन्त्यरूप उपमा रहित है और आपने जो अपना पराक्रम दिखाकर देवताओं के सताने वाले राक्षसोंको मारा है तो इससे

आपकी दयालुता प्रकट होती है ॥ २० ॥ हे देवि ! लोकत्रय में भी तुम्हारे समान कोई नहीं किस से उपमा दिया जाय । क्योंकि तुम्हारा पराक्रम और रूप शत्रुओं को भय देने वाला और समय पर उन्हीं दुष्टों के ऊपर

वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २० ॥ केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपंच शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र । चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं

चित्त में बड़ी दया, युद्ध में निष्ठुरता ये गुण तीनों लोक में तुम्हारे सिवाय किस में हैं ॥ २१ ॥ हे देवि ! आपने समर में दुष्टोंका नाश करके जो तीनों लोकका रक्षा की है और उन शत्रुओं को स्वर्ग में प्राप्त किया

है और हम सबका भय दूर किया है इन सब बातोंके गुणानुवाद में सिवाय प्रणाम करने के और क्या हम सबसे हो सकता है ॥ ६२ ॥ हे देवि ! आप अपने शूल से और घण्टा बजाने और धनुष चढ़ाने की आवाज से हम लोगों

त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारि भवन्नमस्ते ॥२२॥ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके । घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ २३ ॥ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्याञ्च चंडिके रक्ष दक्षिणे । भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्त-

की रक्षा कीजिये ॥ २३ ॥ हे चण्डिके ! आप अपने शूलको घुमाकर पूर्व और पश्चिम और दक्षिण और उत्तर दिशा में-और इसी तरह चारों कोनों में

हे ईश्वरी ! हमारी रक्षा कीजिये ॥२४॥ आपका तीनों लोक में सृष्टिपालन करने वाला और नाश करनेवाला जो मङ्गल और भयानक रूप है ऐसे रूप से हम सबकी और पृथ्वीकी रक्षा कीजिये ॥ २५ ॥ हे अम्बिके ! आपके कर पल्लव

रस्यां तथेश्वरि ॥ २४ ॥ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते । यानि चात्यर्थघोराणि तैरस्मांस्तथा भुवम् ॥ २५ ॥ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके । करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ २६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः

में खडग शूल इत्यादि जो सब अस्त्र विराजमान हैं उन अस्त्रों से हम सबकी सर्वत्र रक्षा कीजिये ॥ २६ ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ !

जब इस तरह सब देवता लोगोंने नन्दन वनके दिव्य फूलों और गन्ध चन्दन इत्यादि से जगद्धात्री भगवतीको पूजन और स्तुति का ॥ २७॥ तब सम्पूर्ण देवता लोगोंने भक्तिपूर्वक दिव्य धूपके धूमसे जब भगवती को प्रसन्न किया तब

कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः। अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥ २७ ॥ भक्त्या समस्तैस्त्रिदशै र्दिव्यै धूपैस्तु धूपिता। प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ २८ ॥ देव्युवाच ॥ व्रियतां त्रिदशास्सर्वे यदस्मत्तोभिवाञ्छितम्। देवा ऊचुः ॥ भगवत्या कृतं सर्वन्न

भगवती कृपा करके उन देवताओं की तरफ सम्मुख हो कर बोली देवी ने कहा कि हे देवता लोगों! जो तुम्हारी इच्छा हो, वह वर मुझसे माँगो मैं दूँगी। देवता-

ओं न कहे कि हे भगवति ! आप हम लोगों की इच्छा पूर्ण कर चुकीं अब कुछ व.की नहीं है ॥ २६ ॥ क्योंकि हम लोगों का शत्रु जो महिषासुर था उसको आपने मारा परन्तु हे माहेश्वरी ! जो आप हम सबको वर देना ही चाहती हैं

किञ्चिदवशिष्यते ॥ २९ ॥ यदयन्निहतश्शत्रुरस्माकं महिषासुरः । यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकम्महेश्वरि ॥ ३० ॥ संस्मृता संस्मृता त्वन्नो हिंसेथाः परमापदः । यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ ३१ ॥

॥ ३० ॥ तो हम लोगों ने भी आपका बहुत ध्यान किये हैं एक तो हम सबकी परम बिपत्तिको आप सदा प्रसन्न हो कर नाश किया कीजिये हे अमलानने ! इस स्तोत्र से जो मनुष्य आप को स्तुति करे ॥ ३१ ॥ उसके ज्ञान और

ऐश्वर्यसंयुक्त धन और स्त्री और पुत्र इत्यादिको वृद्धिके वास्ते हे अम्बिके ! सब दिन आप उसपर सहाय रहिये॥३२॥ मेधाऋषि कहतेहैं कि हे राजन् ! इस तरह देवतालोगों ने अपने और दूसरोंके लिये भगवती की प्रार्थना की तब वह भद्र

तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् । वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथास्सर्वदाम्बिके ॥३२॥ ऋषिरुवाच॥ इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः । तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३३॥ इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा । देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रय-

काली प्रसन्न होकर एवमस्तु कह कर अन्तर्धान हो गई ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! देवताओं के शरीरसे तीनोंलोक के उपकार के वास्ते जिस तरह देवी उत्पन्न हुई

उसका वृतान्त तो सब तुमसे वर्णन किया ॥ ३४ ॥ फिर जिस तरह दुष्ट दैत्यों और शुम्भ और निशुम्भके लिये गौरीके शरीर से देवी प्रकट हुई ॥ ३५ ॥

हितैषिणी ॥ ३४ ॥ पुनश्च गौरी देहात्सा समुद्भूता यथाभवत् । वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ३५ ॥ रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।तच्छृणुष्व मया ख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥३६॥

और सब लोकोंकी रक्षा और देवताओं का उपकार किया उसका वृतान्त भी विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिकृतदेव्याः स्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिकृतदेव्यास्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः । त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्

ऋषि कहते हैं कि सुरथ ! पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ दोनों असुरों ने अपने बलके अहंकार से इंद्रका राज्य और सम्पूर्ण देवताओंका यज्ञ भाग हरण करके तीनों लोकको अपने वशमें कर लिया ॥१॥ और सूर्य, चंद्रमा,, कुबेर और

T

यम, वरुणका भी अधिकार छीन कर आप ही करने लगा ॥ २ ॥ इसी तरह पवन और अग्निका अधिकार भी आप ही करता था तब देवता लोग उसके

॥ १ ॥ तावेव सूर्यतान्तद्वदधिकारन्तथैन्दवम्। कौबेरमथयाम्यञ्च चक्राते वरुणस्य च॥ २ ॥ तावेव पवनर्द्धिञ्च चक्रतुर्वह्निकर्म च। ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥ ३ ॥ हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः। महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्

डरसे काँप कर और पराजित होकर अपने राज्यसे अलग हो गये ॥ ३ ॥ तो भी उन दोनों असुरोंने देवताओं को चैन न लेने दिया, सबको स्वर्ग से निकाल दिया, तब देवताओं ने अपराजिता देवीका ध्यान किया ॥ ४ ॥ और सोचा कि

भगवती ने हम सबको पूर्वही वरदान दिया है कि जब तुमलोग विपत्ति में मेरा ध्यान करोगे तब मैं उसी समय तुम्हारी विपत्ति छुड़ा दूँगी ॥ ५ ॥ देवता लोग यह बात अपने जीमें सोचकर गिरिराज हिमालय पर्वतमें गये और वहाँ जाकर

॥ ४ ॥ तयास्माकं वरोदत्तो यथापत्सुस्मृताखिलाः । भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥ ५ ॥ इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तन्नगेश्वरम् । जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमोदेव्यै महादेव्यै शिवायै सततन्नमः । नमःप्रकृत्यै भद्रायै नियताः

विष्णुमाया भगवतीकी इस तरह स्तुति करने लगे कि ॥ ६ ॥ उस देवीको हम लोग स्थिर चित्तसे प्रणाम करते हैं जो महादेवी शिवा प्रकृति कहलाती हैं और

कल्याण करती हैं ॥ ७ ॥ और उसी देवीको हम सब हर समय प्रणाम करते हैं जो सबको नाश करनेवाली और आप अविनाशी हैं और गौरी हैं तथा सम्पूर्ण

प्रणताः स्म ताम् ॥ ७ ॥ रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमोनमः । ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ ८ ॥ कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कूर्मो नमोनमः । नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमोनमः ॥ ९ ॥ दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ॥ ख्यात्यै

जगत्को धारण करनेवाली ज्योतिस्वरूपिणी परमानन्दरूपा हैं ॥८॥ और प्रणत-जनोंका कल्याण करने वाली और ऋद्धि सिद्धि देनेवाली भगवती जो पर्वतों की लक्ष्मी और शिवशक्ति तथा शर्वाणी हैं उनको हमलोग बारंबार प्रणाम करतेहैं॥९॥

और संसार सागरसे पार करनेवाली दुर्गा और सब जगत्का कार्य करने वाली और परकीर्ति पुरुषमें भेद ज्ञानरूपिणी कृष्णा अर्थात् काली धूम्रा अर्थात् जिनका रूप धुआंसा है उनको हमारा प्रणाम है ॥ १० ॥ और उस भगवती को हमारा

तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततन्नमः ॥ १० ॥ अतिसौम्या-तिरौद्रायै नतास्तस्यै नमोनमः। नमोजगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥११॥ या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो-

वारंवार प्रणाम है जो संसारको स्थिर करने वाली और अत्यन्त दयावती और संसार में प्रवृति करनेवाली अति रौद्रा है, और सम्पूर्ण जगत्का कारण देवशक्ति और क्रियारूपा हैं ॥ ११ ॥ जो देवी सब प्राणियों में विष्णुमाया मूल विद्या

कहलाती हैं उनको मन, वचन, कर्म से हम लोग प्रणाम करते हैं ॥ १२ ॥ जो देवी सब प्राणियों में चैतन्यरूपी होकर विराजती हैं उनकों हम सबका प्रणाम

नमः ॥१२॥ या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥१३॥ या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १४ ॥ या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै

है ॥१३॥ जो सब प्राणियों में बुद्धिरूप होकर विराजती हैं उनको प्रणाम है ॥१४॥ जो देवी सब प्राणियों में निद्रारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ १५ ॥ जो देवी सब प्राणियों में क्षुधारूप होकर रहती हैं

उनको हमारा प्रणाम है ॥ १६ ॥ जो देवी सब प्राणियों में छायारूपी होकर रहती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ १७ ॥ जो देवी सब प्राणियों में

नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १५ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षुधा रूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः॥१६॥या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १८ ॥ या देवी सर्व-

शक्तिरूपा होकर रहती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ १८ ॥ जो देवी सब

जोवों में तृष्णारूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ १६ ॥
जो देवी सब में क्षमारूपा होकर रहती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ २० ॥

भूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १६ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥ या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ २१ ॥ या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।

जो देवी सब प्राणियों में लज्जारूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ २१ ॥ जो देवी सब प्राणियो में शान्तिरूपा होकर विराजती हैं

उनको हमारा प्रणाम है ॥ २२ ॥ और जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ २३ ॥ जो देवी सब जीवों में कान्ति

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२२॥ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ २३ ॥ या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ २४ ॥ या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।

अर्थात् तेजोरूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ २५ ॥ जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मीरूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है

॥ २५ ॥ जो देवी सब जीवों में जीविका रूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ २६ ॥ जो देवी सब प्राणियों में स्मृति अर्थात् अनुभव-

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः
॥२५॥ या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः
॥ २६ ॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः
॥ २७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।

रूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ २७ ॥ जो देवी सब प्राणियों में दयारूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ २८ ॥

जो देवी सब प्राणियों में तुष्टि अर्थात् सन्तोषरूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ २९ ॥ जो देवी सब प्राणियों में मातृरूपा होकर विरा-

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२८॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२९॥ या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तयै नमोनमः ॥ ३० ॥ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नम-

जतो हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ ३० ॥ जो भगवती सब प्राणियो में भ्रान्ति

रूपा होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ ३१ ॥ जो देवी सब प्राणियो में इन्द्रियोकी मालिक और सब में व्याप्त हैं उनको हम सबका प्रणाम

स्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३१॥ या देवी सर्व-भूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्त-स्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३२॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानामखिलेषु या। भूतेषु सततं तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमोनमः ॥ ३३ ॥ चितिरूपेण या कृत्स्नमेत-

है ॥ ३२ ॥ फिर वह देवी जो चैतन्य शक्तिरूप होकर सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं उनको मन, वचन, कर्म से हम लोग प्रणाम करते हैं ॥ ३३ ॥ जिस देवी ईश्वरी भगवतीकी कल्याण कारण के ब्रह्म आदि देवताओं ने पहिले

स्तुति की है और महिषासुर के वध होने पर अपना वाञ्छित मनोरथ सिद्ध होने से इन्द्रने जिनकी सेवा की है वह देवी हमलोगों की विपत्ति को नाश करके अत्यन्त कल्याण करे ॥ ३४ ॥ और वह देवी हम लोगों को सम्पूर्ण विपत्ति को

द्व्याप्य स्थिता जगत्। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ३४॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथासुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता। करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहंतु चापदः ॥३५॥ या साम्प्रतञ्चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते। या च

हरण करे जिसकी स्तुति इस समय प्रबल दैत्यों से पीडित होकर हम लोग करते हैं और जो देवी हम लोगों के स्मरण करने पर शीघ्रही सम्पूर्ण

T

विपत्तिको नाश करती हैं ॥ ३५ ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे राजा सुरथ ! इस तरह देवताओं के स्तुति करने से प्रसन्न होकर श्रीपार्वतीजी शिव शक्ति रूपसे

हन्तिनस्सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्ति-
स्मृता तत्क्षणमेव

भिः॥३६॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं स्तवादियुक्तानान्देवानान्तत्र
पार्वती । स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन
॥ ३७ ॥ साब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ ३८ ॥
स्तोत्रम्ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः । देवैस्स-

गंगा स्नान करने के बहाने से देवताओं के सामने प्रकट हुईं ॥ ३६ ॥ और उन लोगों से कहने लगी कि तुम लोग किसकी स्तुति करते हो तत्पश्चात् उनके

शरीर से सात्विकरूप सरस्वती शिवा प्रकट होकर देवताओं से कहने लगीं कि ॥३८॥ जो देवता लोग समर में निशुम्भ असुरों से पराजित होकर यहाँ इकट्ठा होकर हमारी स्तुति करते हैं ॥ ३९ ॥ मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जो कि

मेतैस्समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ ३९ ॥ शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःस्सृताम्बिका। कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ४० ॥ तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती ॥ कालिकेति समाख्याता

वह देवी श्रीपार्वतीजी के शरीर कोश से प्रकट हुईं इससे कौशिकी कहलाती हैं ॥ ४० ॥ और वह देवी उसी हिमाचल पर्वत पर रहने लगी इनके प्रकट होने से अर्थात् निकल जाने से श्रीपार्वतीजी कृष्णा अर्थात् काली होगईं इसीसे

कालिका कहलाने लगीं ॥ ४१ ॥ दैवयोग से उस अम्बिका देवीके मनोहर रूपको शुम्भ निशुम्भ के नौकरों ने जिनका नाम चण्ड मुण्ड था देखा ॥ ४२ ॥ और वे दोनों अपने स्वामी शुम्भके पास जाकर बोले कि हे महाराज ! एक स्त्री

हिमाचलकृताश्रया ॥ ततोम्बिकां परं रूपम्बिभ्राणां सुमनोहरम् । ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ४२ ॥ ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता सातीव सुमनोहरा । काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ ४३ ॥ नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।

अतिमनोहर प्रकाशसे सम्पूर्ण हिमाचल पर्वतको प्रकाशमान किये हुए है ॥४३॥ ऐसा उत्तम रूप किसीका मैंने कभी नहीं देखा है । मुझे यह निश्चय होता है

कि वह कोई देवी हैं। हे असुरेश्वर! इस देवीको आप ग्रहण कीजिये ॥४४॥ क्योंकि वह स्त्री अत्यन्त सुन्दरी सब स्त्रियों में रत्न है। हिमाचल पर्वत पर अपने शरीरके प्रकाशसे दशों दिशाको प्रकाशित कर रही है आपके देखने योग्य

ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यताञ्चासुरेश्वर ॥ ४४ ॥ स्त्री-रत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा । सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र ताम्भवान्द्रष्टुमर्हति ॥ ४५ ॥ यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादिनि वै प्रभो । त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतम्भान्ति ते गृहे ॥ ४६ ॥ ऐरावतः समानीतो

है उसको देखिये ॥ ४५ ॥ क्योंकि जितने रत्न और मणि हाथी और घोड़े त्रिलोकमें रत्न हैं वे सब इस समय आपके घरमें वर्तमान हैं ॥ ४६ ॥ जिस

प्रकार ऐरावत गजरत्न को इन्द्रसे छीनकर आप लाये और पारिजात वृक्षरत्न को और घोड़ों में रत्न उच्चैःश्रवा घोड़े को लाये ॥४७॥ और ब्रह्माका हंसयुक्त विमान रत्न भी आपने अपने बलसे लाकर घरमें रक्खा है जो अब तक वर्तमान

गजरत्नं पुरन्दरात् । पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥४७॥ विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे । रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥४८॥ निधिरेषमहापद्मः समानीतो धनेश्वरात् । किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ४९ ॥ छत्रन्ते वारु-

है ॥ ४८ ॥ और महापद्मनाम निधि जो सब निधियों में रत्न है उसको भी आप कुबेर से छीनकर ले आये और कमलकी सुन्दर माला समुद्रने आपको डरकर

देदो ॥ ४६ ॥ और वरुण का छाता जो सु वर्ण वर्षा करता है वह भी आपके घरमें मौजूद है इसी तरह उत्तम स्यन्दन अर्थात् रथ भी जो पहिले प्रजापति के पास था आपके घर में मौजूद है ॥ ५० ॥ और मृत्यु उत्क्रान्तिदा नाम अर्थात्

गाङ्गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठत्ति । तथायं स्यंदनवरो यः पुरासीत्प्रजापतेः ॥ ५० ॥ मृत्योरुत्क्रान्तिदानामशक्तिः रीशस्त्वया हृता । पाशस्सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ ५१ ॥ निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजा-

मौत देनेवाली मृत्युशक्ति भी आप छीनकर ले आये हैं और वरुण का पाश छीनकर आपके भाई निशुम्भ अपने हाथ में रक्खे हुए हैं ॥५१॥ और जो जो

रत्न समुद्र से उत्पन्न हैं वे सब निशुम्भ के हाथमें सर्वकाल रहते हैं और अ-
ग्निने मारे डरके आपके पहिरने के वास्ते सुन्दर वस्त्रका आभरण दे दिया है
॥५२॥ हे दैत्येन्द्र ! इसी प्रकार जितने रत्न हैं वे सब आपने हरण करके अपने

तयः । वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥५२॥
एवं दैत्येन्द्ररत्नानि समस्तान्याहृतानि ते। स्त्रीरत्नमेषा
कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥ ५३ ॥ ऋषिरुवाच ॥
निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः । प्रेषया-

पास रक्खे हैं तो इस कल्याणी स्त्रीरत्न का आप क्यों नहीं ग्रहण करते हैं
॥ ५३ ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! चण्ड मुण्डका यह बचन सुनकर शुम्भ

ने सुग्रीव नाम दूतको देवीके पास भेजा ॥ ५४ ॥ और उससे कह दिया कि मेरा यह हुक्म उसको सुनावो और जिस तरह वह राजी होकर आवे उसी तरह ले आवो ॥ ५५ ॥ तब वह दूत शुम्भका आज्ञा पाकर उस पर्वत पर जहां देवीजी

मास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्॥५४॥इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम। यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा-कार्यं त्वया लघु ॥ ५५ ॥ स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलो-द्देशेऽतिशोभने। सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णम्मधु-रया गिरा ॥ ५६ ॥ दूत उवाच। देवि दैत्येश्वरः शुम्भ-

रहती थी जाकर मधुर शब्द से कहने लगा ॥ ५६ ॥ कि हे देवि! शुम्भ नाम दैत्यों का राजा जों तीनों लोक का ईश्वर है उसका भेजा हुआ मैं आपके पास

आया हूं ॥ ५७ ॥ उसका हुक्म देवता लोग मानते हैं और वह सब देवताओं का भी ईश्वर है। उसने जो संदेशा आपसे कहने को मुझसे कहा है वह मैं कहता हूं सो सुनिये ॥५८॥ उसने कहा है कि यह त्रैलोक्य हमारा है और सब

स्त्रैलोक्ये परमेश्वरः। दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ५७ ॥ अव्याहताज्ञःसर्वासु यः सदा देवयोनिषु। निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुस्व तत् ॥ ५८ ॥ मम त्रैलोक्यमखिलम्मम देवा वशानुगाः। यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥५६॥ त्रैलोक्ये वररत्ना-

देवता लोग हमारे वशमें हैं और सब यज्ञों का भाग पृथक् पृथक् मैं ही लेता हूं ॥५६॥ और तीनों लोक में जो अच्छे अच्छे रत्न हैं वे सब मेरे पास हैं जैसा कि

हाथियों में रत्न ऐरावत हाथी मैंने इन्द्र से छीन लिया है ॥ ६० ॥ और समुद्र मथनमें जो उच्चैःश्रवा घोड़ा रत्न निकला था उसको भी देवता लोग हाथ जोड़ कर मुझे दे गये ॥ ६१ ॥ और देवगण और गन्धर्वगण और नागगण के पास

नि ममवश्यान्यशेषतः । तथैव गजरत्नञ्च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥ ६० ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः। उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥ ६१ ॥ यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च । रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥ ६२ ॥ स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके

जो जो रत्न थे वे सबके सब मेरे पास मौजूद हैं ॥ ६२ ॥ और इस लोकमें मैं तुमको रत्न समझता हूं इस से तुम मेरे पास चली आवो क्योंकि इस समय

रत्नभोक्ता मैं ही हूं ॥ ६३ ॥ मेरे पास अथवा मेरे छोटे भाई निशुम्भके पास जहाँ तुम्हारी इच्छा हो आकर रहो और सेवा करो क्योंकि तुम रत्नरूप हो ॥ ६४ ॥ मेरी सेवा करने से तुमको अतुल धन प्राप्त होगा। इन बातोंका विचार

मन्यामहे वयम् । सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥६३॥ मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् । भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः॥६४॥ परमैश्वर्यमतुलम्प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् । एतत्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥ ६५ ॥ ऋषिरुवाच ॥

कर के मेरी स्त्री होकर रहो ॥६५॥ मेधाऋषि कहतेहैं कि हेराजन् ! इस तरह जब असुर के दूतने देवी से कहा तब वह दुर्गा भगवती जो जगत् के कल्याण के

वास्ते शरीर धारण करती हैं मुसकुराकर बहुत गम्भीर शब्द से बोलीं ॥ ६६ ॥ कि तुमने जो कहा वह सब सत्य है किञ्चित् मिथ्या नहीं हैं, शुम्भ और नि-

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तस्मिता जगौ । दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ ६६ ॥ देव्युवाच ॥ सत्यमुक्तन्त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदित्तम् । त्रैलो-क्याधिपतिःशुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥ ६७ ॥ किन्त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् । श्रय-

शुम्भ तीनों लोक के मालिक हैं ॥ ६७ ॥ परन्तु स्वामी करने के वास्ते जो मैंने प्रतिज्ञा की हैं उसको किस प्रकार मिथ्या करूँ प्रतिज्ञा छोड़ना बड़ा दोष है

मैंने मूर्खता से जो प्रतिज्ञा पहले की है वह सुनो ॥ ६८ ॥ प्रतिज्ञा मेरी यह है कि जो कोई समर में मुझको जीत ले या जो मेरे अहंकार को किसी तरह तोड़ दे अथवा जिसको मेरे बराबर बल हो वही मेरा पति होगा ॥ ६९ ॥ ऐसा

तामल्पबुद्धित्वात् प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ ६८ ॥ यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प्पं व्यपोहति । यो मे प्रति-बलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥ ६९॥ तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः । मां जित्वा किञ्चिरे-णात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥ ७० ॥ दूत उवाच ॥

सामर्थ्य जो शुम्भ में हो अथवा निशुम्भ में हो तो यहां आकर मुझको समर में जीतकर इसी समय विवाह ले ॥ ७० ॥ यह बात सुनकर दूत बोला कि हे

देवि इस तरह घमण्ड की बात हमारे आगे मत बोलो, तीनों लोक में ऐसा कौन पुरुष समर्थ है जो शुम्भ निशुम्भ के आगे खड़ा रहे तुम तो स्त्री हो ॥७१॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः । त्रैलोक्ये कः पुमाँस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ७१ ॥ अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि । तिष्ठन्ति संमुखे देवि किं पुनः स्त्रीत्वमेकिका ॥ ७२ ॥ इंद्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे । शुंभादीनां कथं तेषां स्त्री प्रया-

और जो उनके दूसरे दैत्य लोग हैं उनके सामने भी कोई ऐसा देवता समर में नहीं खड़े हो सकते तुम तो स्त्री और अकेली हो । किस तरह समर में उनका सामना कर सकोगी ॥ ७२ ॥ और जिन शुम्भ इत्यादि असुरों के आगे इन्द्र

आदि सम्पूर्ण देवता मिलकर समर में नहीं खड़े हो सके उन लोगों के साथ तुम स्त्री होकर किस तरह रण चाहती हो ॥ ७३ ॥ मेरा कहा मानो तुम शुम्भ निशुम्भ के पास चलो नहीं तो उनका कोई दूसरा दुष्ट दैत्य आवेगा तो

स्यासि संमुखम् ॥७३॥ सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः । केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ ७४ ॥ देव्युवाच ॥ एवमेतद्बली शुम्भो निशुम्भश्चाति वीर्यवान् । किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा

वह तुम्हारा घमण्ड तोड़कर और तुम्हारे शिर के बाल पकड़ कर ले जायगा ॥ ७४ ॥ दूतको यह बात सुनकर बलो और पराक्रमी हैं परन्तु क्या करूँ मैं पहिले विना विचारे ऐसी प्रतिज्ञा कर

चुकी हूं, अब दूसरी बात नहीं हो सकती ॥ ७५ ॥ अब तुम जावो और जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह सब वैसा ही असुरों के स्वामी शुम्भ से जाकर कहो फिर इस बातमें जो यत्न वह सोचेंगे करेंगे ॥ ७६ ॥

॥७५॥ स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः। तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु यत् ॥ ७६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्यादूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! इतनी बातें देवीजीकी सुनकर वह दूत ईर्षासंयुक्त हो दैत्यराज अर्थात् शुम्भके पास गया और देवीकी सब बातें विस्तार

ऋषिरुवाच। इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्ष-पूरितः। समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥१॥ तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः। सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥२॥ हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः। तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्ष-

पूर्वक कह सुनाया ॥ १ ॥ दूतकी बात सुनते ही वह असुरराज शुम्भ क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन से कहने लगा ॥ २ ॥ कि हे धूम्रलोचन! तुम अपनी सेना को साथ लेकर शीघ्र वहां जावो और उस दुष्टा को केश पकड़कर

विह्वल करके जबरदस्ती यहां ले आओ ॥ ३ ॥ जो उसका कोई रक्षक सामना करे, चाहे वह देवता हो चाहे यक्ष चाहे गन्धर्व कोई हो उसको तुम मार डालना ॥ ४ ॥ ऋषि कहते हैं कि इतनी आज्ञा शुम्भकी पाकर शीघ्र ही वह धूम्रलोचन

णाविह्वलाम्॥३॥तत्परित्राणदः कश्चिद्यदिवोत्तिष्ठते परः। स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥४॥ ऋषिरुवाच॥ तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः।वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥५॥ स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्। जगादोच्चैः प्रयाहीति

साठ हजार असुर साथ लेकर चला ॥ ५ ॥ और वहां जाकर उस हिमाचल पर्वतपर देवीको विराजमान देखकर कड़े शब्द से बोला कि तुम शुम्भ निशुम्भके

पास चलो ॥६॥ यदि प्रीति संयुक्त मेरे स्वामीके पास नहीं चलोगी तो तुम्हारा झोटा पकड़ कर विह्वल करके बरजोरी ले जाउँगा ॥ ७ ॥ देवीने कहा कि तुम दैत्यराज की आज्ञासे सेना साथ लेकर आये हो बलवान् हो यदि बरजोरी मुझे

मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥६॥ नचेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यसि । ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ७ ॥ देव्युवाच ॥ दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः । बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥८॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्तःसोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।

ले जावोगे तो मैं क्या कर सकूंगी ॥ ८ ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि इतना कहने पर वह असुर धूम्रलोचन क्रोध करके देवीपर दौड़ा, तब अम्बिका देवीने हुंकार शब्द

करके उसको भस्म कर डाला ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् असुरों को सेना महाक्रोध करके लड़ने के वास्ते उपस्थित हुई और देवी जी भी क्रोध संयुक्त होकर अच्छे २ बाणों और शक्ति परशु आदि अस्त्रों की वर्षा करने लगी ॥ १० ॥ तब देवी

हुंकारेणैव तम्भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥ ९ ॥
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणान्तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥ १० ॥
ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥ ११ ॥

जीके वाहन अर्थात् सिंहने अपने मनमें विचार किया कि बिना सेनापति के समरमें देवीको परिश्रम करना उचित नहीं इससे अपनी पूंछ हिलाकर गर्जता

हुआ असुरों की सेनामें कूदकर पहुँचा ॥११॥ और किसीको हाथ के प्रहार से किसीको मुखसे किसीको अपने भ्रमणके जोर धक्केसे किसोको अपने ओठसे मार डाला ॥१२॥ और किसी का उस सिंहने नखसे पेटही फाड़ डाला और

कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्। आक्रान्त्या चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥१२॥ केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केशरी । तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१३ ॥ विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे। पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषान्धुत-

किसीका हाथहोसे मारकर शिर तोड़ डाला ॥ १३ ॥ और कितनों का उस सिंहने बाहु और शिर काट डाला और कितनों का पेट फाड़ कर रुधिर पान कर

लिया ॥ १४ ॥ इसी तरह उस देवीके वाहन सिंहने अत्यन्त कोप करके क्षणमात्रमें उस असुर दल को मार डाला ॥ १५ ॥ जब देवीके हाथसे धूम्रलोचन का

केसरः ॥१४॥ क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयन्नीतं महात्मना । तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१५॥ श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् । बलञ्च क्षयितं कृत्स्नं देवी केसरिणा ततः ॥१६॥ चुकोप दैत्याधिपतिश्शुम्भः प्रस्फुरिताधरः । आज्ञापयामास च तौ चण्ड-

मरना और उनके वाहन सिंह द्वारा सम्पूर्ण सेनाका नाश होना शुम्भने सुना ॥ १६ ॥ तब दैत्यों का अधिपति शुम्भ अत्यन्त क्रोधित हुआ और मारे क्रोधके

T

मुण्डौ महासुरौ ॥ १७ ॥ हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुलैः परिवारितौ। तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ १८ ॥ केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि। तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ १९ ॥ तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते। शीघ्रमाग-

ओंठ काँपने लगा तब चण्ड और मुण्डादि असुरों से कहा ॥ १७ ॥ कि हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुमलोग बहुतसी सेना लेकर वहां जावो और उस देवी को जल्द ले आवो ॥ १८ ॥ केश पकड़कर अथवा बाँधकर ले आना यदि यह भी न हो सके तो सब कोई मिलकर अस्त्रों से मार ही डालना ॥ १९ ॥ और उस दुष्टाके मारे जानेपर उसके वाहन सिंहको भी मार डालना और जल्द आवो

शक्तिभर उस अम्बिका को बाँधही कर ले आना ॥ २० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये-
धूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

म्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥ २० ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
धूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऋषिरुवाच ॥ आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्ड-
पुरोगमाः । चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ १ ॥

मेघाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! इस तरह शुम्भको आज्ञा पाकर चण्ड
और मुण्ड इत्यादि सब दैत्य अस्त्र शस्त्र संयुक्त चतुरङ्गिणी सेना लेकर देवीजी

को ले आने के वास्ते गये ॥ १ ॥ तब उन असुरों ने हिमाचल पर्वत के शृङ्गपर सिंहपर चढ़ी हुई मन्द २ मुसकुराती हुई भगवती को देखा ॥ २ ॥ यह देखकर राक्षसों में से कोई तो अपना धनुष चढ़ाकर कोई खड्ग लेकर समीप जाकर

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् । सिंहस्यो-परि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥ २ ॥ ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमञ्चक्रुरुद्यताः । आकृष्टचापासिधरास्तथा-न्ये तत्समीपगाः ॥ ३ ॥ ततः कोपञ्चकारोच्चैरम्बिका तानरीन्प्रति । कोपेन चास्या वदनम्मसीवर्णमभूत्तदा

देवीजी को पकड़ने पर नियुक्त हुआ ॥ ३ ॥ तब अम्बिका देवीने उन शत्रुओं पर ऐसा क्रोध किया कि मारे क्रोधके भगवती का शरीर उस समय कज्जल के

सदृश काला हो गया ॥ ४ ॥ और उस कोपसे भगवती के टेढ़ी भृकुटी संयुक्त ललाट वाली शीघ्रही हाथोंमें खड्ग, और पाश धारण किये हुए भयानक मुखवाली श्री कालीजी प्रगट हुईं ॥ ५ ॥ और वह विचित्र खट्वांगधरा अर्थात् मुरदेका

॥ ४ ॥ भ्रुकुटीकुटिला तस्या ललाट फलकादद्रुतम् । काली करालवदना विनिष्क्रान्तासि पाशिनी॥५॥ विचित्र-खट्वाङ्गधरा नरमाला विभूषणा । द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ६ ॥ अतिविस्तारवदना जिह्वाल-लनभीषणा । निमग्ना रक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा

पंजर अथवा खटिया का अङ्ग लिये और मुण्डमाल पहिने हुए और बाघकीखाल ओढ़े हुए अत्यन्त भयावनी बिना मांसका शरीर ॥ ६ ॥ और मुखसे बड़ा भारी

जीभ काढ़े हिलाती हुई और भयानक कुंवाके समान गहिरे तीननेत्र धारण किये और अपने गर्जन शब्द से दशों दिशाको पूरित करती हुई ॥७॥ वह काली बड़े वेग से उस असुरदल में पहुँच कर उन महाअसुरों को मारने लगी, यहाँ तक

॥७॥ सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्। सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ ८ ॥ पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहि योधघण्टासमन्वितान् । समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ ९ ॥ तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह। निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम्

कि सम्पूर्ण राक्षस दल को भक्षण कर गई ॥८॥ और एकही हाथ से महावत और सवार और घण्टा हाथियों इत्यादि को पकड़ कर अपने

मुखमें डाल लिया ॥ ९ ॥ इसी तरह घोड़ोंको भी उनके सवारों के सहित और रथोंको भी उनके कोचवानों के सहित मुखमें डालकर दाँतों से चबा डाला ॥ १० ॥ और किसीके केश पकड़ कर किसी को छाती का धक्का मारकर किसी

॥ १० ॥ एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् । पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ ११ ॥ तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः । मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ १२ ॥ बलिनां तद्बलं सर्वमसुराणान्दुरा-

का गला दबा कर किसी को पाँवतले दबाकर मार डाला ॥ ११ ॥ जो असुर अस्त्र और शस्त्र चलाते थे उन सबको क्रोधसंयुक्त मुखमें डालकर दातों से पीस डाला ॥ १२ ॥ और बड़े बड़े बली महासुरों को हथियारों से मार डाला और

कितनों को खा गई ॥ १३ ॥ कितने तो तलवार की मारसे और कितने खट्वा-ङ्की मारसे और कितने दन्ताग्र अर्थात् दातों की नोंकके मारसे मर गये इसी तरह असुरों की सब सेना नाशको प्राप्त हो गई ॥१४॥ तात्पर्य यह है कि एकही

त्मनाम् । ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥१३॥ असिना निहताः केचित् केचित्खट्वाङ्गताडिताः । जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥१४॥ क्षणेन तद्बलं सर्वमसुराणां निपातितम् । दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥१५॥ शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं

क्षणमात्रमें जब देवीजी ने सम्पूर्ण सेनाको नाश कर दिया तब वह चण्ड और मुण्ड आप श्री कालीजी की तरफ दौड़ा ॥ १५ ॥ और महा भयंकर बाणों की

वर्षा करके और हजारों चक्र भी फेंककर कालीजी को ढांप लिया ॥ १६ ॥ वह सब चक्र कालीजी के मुखपर सटसटकर ऐसे मालूम होते थे कि जैसे मेघमें

तां महासुरः । छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैस्सहस्रशः ॥ १६ ॥ तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् । बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ १७ ॥ ततो जहासातिरुषा भीमम्भैरवनादिनी । काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ १८ ॥ उत्थाय च महासिंहं देवी चण्डमधावत । गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्ते-

बहुतसे सूर्यों की किरणें शोभायमान हों ॥ १७ ॥ उस समय बड़े भयंकर मुख और दाँत दिखला कर कालीजी महागर्जनसंयुक्त हँसी ॥१८॥ और महाखड्ग

उठाकर बड़े क्रोधसंयुक्त [हुं] ऐसा शब्द उचारण करके चण्डकी तरफ दौड़ी और केश पकड़कर उसका शिर काट लिया ॥ १९ ॥ जब चण्ड मारा गया तब मुण्ड देखकर दौड़ा तो उसको भी कालीजी ने मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया॥२०॥

नासिनाच्छिनत् ॥ १९॥ अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् । तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥२०॥ हतशेषं ततः सैन्यंदृष्ट्वा चंडं निपातितम् । मुण्डञ्च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम्॥२१॥ शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुंडमेव च।प्राह प्रचण्डा-

फिर तो उन दोनों चण्ड और मुण्ड के मारे जाने पर असुरों की बाकी सेना डर कर जहाँ तहाँ मारी गई ॥ २१ ॥ तब कालीजी चण्ड और मुण्डका शिर

घड़ सहित लेकर बड़े जोर से हँसती हुई चण्डिका देवी के पास जिनके ललाटसे निकली थीं आकर बोलीं कि ॥ २२ ॥ हे देवि ! इस समर के यज्ञ में मैंने तुम्हारे वास्ते इन दोनों महापशु चण्ड और मुण्डको बलिदान दिया है इसी बलि

ट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ २२ ॥ मया तवात्रो-पहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू। युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥२३॥ ऋषिरुवाच । तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ । उवाच काली कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥ यस्माच्चण्डं च मुण्डञ्च गृहीत्वा त्वमुपा-

से तृप्त होकर तुम अपने हाथसे शुम्भ और निशुम्भ को मारोगी ॥ २३ ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! उस महा असुर चण्ड और मुण्ड के मृतक

शरीरको देखकर चण्डिका देवी कालीजीसे कहने लगीं ॥२४॥ कि जो तुम चण्ड मुण्डको मार कर मेरे सामने लाई हो इस वास्ते हे देवि ! तुम चामुण्डा नाम से जगत् में विख्यात होगी ॥ २५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्ड वधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

गता । चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि॥२५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

चंडे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते । बहुलेषु च

फिर मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जब कालीजीने चण्ड मुण्ड इत्यादि

दैत्यों को मार डाला और बाकी सेनाको घायल किया तब असुरों के मालिक ॥ १ ॥ महाप्रतापी शुम्भ ने कोपसे व्याकुल होकर दैत्यों की सेना को देवीसे लड़ने के वास्ते तैयार होने का हुक्म दिया ॥२॥ कि इस समय जो उदायुध नाम

सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ १ ॥ ततः कोपपराधीन-चेताश्शुम्भः प्रतापवान् । उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्या-नामादिदेश ह ॥ २ ॥ अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदा-युधाः । कम्बूनां चतुरशीति निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥३॥ कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै । शतं कुला-

के छियासी बलवान् दैत्य हैं और कम्बूनाम के जो चौरासी दैत्य हैं वे सबलोग अपनी अपनी सेना लेकर देवीसे लड़ने को चलें ॥ ३ ॥ और कोटिवीर्य नाम

जो पचास दैत्य हैं धूम्रवंशके जो सौ असुर हैं वे सब कोई तैयार होकर लड़नेके वास्ते चले ॥ ४ ॥ और कालका नाम करके जो असुर हैं और दौहृद नाम असुर के जो बेटे हैं और मौर्य नाम करके जो असुर हैं और कालका के

नि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ ४ ॥ कालका दौहृदा मौर्याः कालकेयास्तथा सुराः । युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ५ ॥ इत्याज्ञाप्यासुर-पतिः शुम्भो भैरवशासनः । निर्जगाम महासैन्यसहस्रै र्बहुभिर्वृतः ॥६॥ आयान्तं चंडिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमति-

बेटे लोग सबके सब युद्धका सामान लेकर रणभूमि में जायँ ॥ ५ ॥ इस तरह की प्रबल आज्ञा देकर वह शुम्भ असुरों का मालिक हजारों फौज अपने साथ

लेकर लड़ने के वास्ते निकला ॥ ६ ॥ इस तरह की भयानक बहुतसी सेना देखकर चण्डिका देवीने अपने धनुष को चढ़ाया कि जिसके चढ़ाने का शब्द आकाश और पाताल में पहुँचा ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् वह देवीका वाहन सिंह भी

भीषणाम् । ज्यास्वनैः पूरयामास धरणी गगनान्तरम् ॥ ७ ॥ ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप । घंटास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥८॥ धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा । निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥ ९ ॥ तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्य-

गर्जा और उसके गर्जने का शब्द चण्डिका के घण्टे के शब्द से मिलकर और भी बढ़ गया ॥८॥ इस तरह सिंह, और घण्टे की आवाज से दशो दिशाएँ गूँज उठीं और अम्बिका देवीके धनुषके भयानक शब्दके आगे कालीजीको गर्जना

कम पड़ गई ॥ ९ ॥ ऐसा शब्द सुनकर दैत्यों की सेना ने क्रोध करके काली और सिंह को चारों तरफ से घेर लिया ॥१०॥ इस समय उन असुरों के नाश और देवताओं के कल्याण होने के वास्ते बड़े बड़े वीरों को साथ लेकर ॥ ११ ॥ब्रह्मा,

सैन्यैश्चतुर्दिशम् । देवी सिंहस्तथा काली शरौघैः परिवारिताः ॥१०॥ एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् । भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥ ११ ॥ ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः । शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥१२॥ यस्य देवस्य यद्रूपं

महादेव, विष्णु, इन्द्र और अन्य देवताओं की शक्तियाँ उन्हीं देवताओं का रूप धारण करके चण्डिका देवी के पास पहूँचो ॥ १२ ॥ और जिन देवताओं का जैसा जैसा रूप और जैसी जैसी सवारी तथा पोशाक थी वैसाही उन देवताओं

की शक्तियाँ भी धारण करके असुरों से युद्ध करने के वास्ते आईं ॥ १३ ॥ अर्थात् हंसयुक्त विमान पर बैठकर हाथमें माला और कमण्डलु लिये ब्रह्माजी की शक्ति जो ब्रह्माणी कहलाती हैं ॥१४॥ और एक बड़ा त्रिशूल हाथमें लिये

यथा भूषणवाहनम् । तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥ १३ ॥ हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमंडलुः । आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीत्यभिधीयते ॥ १४ ॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारणी । महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखा विभूषणा ॥ १५ ॥ कौमारी शक्तिहस्ता

हुए महातत्वक सर्प बाहुमें लपेटे चन्द्र कला शरीर में भूषण पहिने महादेव की शक्ति माहेश्वरी आई ॥ १५ ॥ इसी तरह हाथमें नाग लिये मोरके ऊपर सवार

युद्ध करने के वास्ते कार्त्तवीर्य की शक्ति कौमारी आई ॥ १६ ॥ इसी तरह शंख चक्र गदा धनुष हाथों में लिये हुये चतुर्भुजी विष्णुकी शक्ति लक्ष्मीजी गरुड़ पर सवार होकर आई ॥ १७ ॥ और अतुल यज्ञ वाराह रूप धारण करने वाली जो

च मयूरवरवाहना । योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥ १६ ॥ तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता । शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ॥१७॥ यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रती हरेः । शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीम्बिभ्रती तनुम् ॥ नारसिंही नृसिंहस्य

विष्णु की शक्ति है वह भी वाराही रूप बनकर आई ॥ १८ ॥ और नृसिंहजी की शक्ति नृसिंह का रूप बना कर रणभूमि में आई जो अपनी केशर से आ-

काश में नक्षत्रों को अलग करती थीं ॥ १९ ॥ इसी तरह हाथ में वज्र लिये ऐरावत हाथी पर सवार सहस्रलोचन इन्द्र की शक्ति भी उस रणभूमिमें पहुँची ॥ २० ॥ इसके बाद उन देवशक्तियों के साथ महादेवजी भी वहाँ आकर चण्डि-

बिभ्रती सदृशं वपुः । प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्र-संहतिः ॥१९॥ वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरिस्थिता। प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥ २० ॥ ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः । हन्यतामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याह चंडिकाम् ॥२१॥ ततो देवी शरीरात्तु

का से बोले कि इन असुरों को शीघ्र मारकर मुझे तृप्त करो ॥ २१ ॥ इस अनन्तर में चण्डिका देवी के शरीर से बहुत भयानक स्वभाववाली हजारों सि-

यास्नों की तरह बोलती हुई एक शक्ति प्रगट हुई ॥ २२ ॥ वहाँ अपराजिता धूम्रवर्णा जटाधारी महादेव जी से बोलीं कि हे भगवन् ! आप मेरी ओर से दूत हो कर शुम्भ और निशुम्भ के पास जाइये ॥ ३३ ॥ और उस घमण्डी दैत्य से

विनिष्क्रान्तातिभीषणा। चंडिका शक्तिरत्युग्रा शिवाशत-निनादिनी ॥ २२ ॥ सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपरा-जिता। दूत त्वं गच्छ भगवन्पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ २३ ॥ ब्रूहि शुम्भं निशुम्भञ्च दानवावतिगर्वितौ। ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥ २४ ॥

और दूसरे असुरों से भी जो लड़ाई करने के वास्ते आये हों उन सबसे कहिये ॥ २४ ॥ कि अब इन्द्र अपना त्रिलोक राज्य करेंगे और देवता लोग अपना

यज्ञ भाग लेंगे इससे तुम लोगोंकी भलाई और जिन्दगी इसी में है कि तुमलोग पाताल में चले जावो ॥ २५ ॥ और जो तुम लोग बलके अहंकारसे युद्धकरना

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः। यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ २५ ॥ बलावले-पादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः। तदा गच्छत तृप्य-न्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ २६ ॥ यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्। शिवदूतीति लोकेस्मिंस्ततः

चाहते हो तो आते जावो कि तुम लोगों का मांस मेरी सियारिनी खा पीकर तृप्त हो जायं। २६ ॥ जो कि उस समय देवी ने साक्षात् महादेव जी को

अपना दूत बनाया था इसलिये वह भगवती शिवदूती कहलाती हैं ॥ २७ ॥ तात्पर्य यह है कि देवी के आज्ञानुसार महादेवजी ने असुरों से जाकर कहे तब वें असुर लोग इस देवीकी बात को बुरा मान कर जहाँ पर वह देवी विराजमान

सा ख्यातिमागता ॥२७॥ तेपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातम्महासुराः । अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२८॥ ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः । ववर्षुरुद्धतामर्षास्तांदेवीममरारयः ॥ २९ ॥ सा च तान्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् । चिच्छेद लील-

थीं वहाँ सब असुर गये ॥ २८ ॥ और भगवती के सामने जाते ही मतवालों की तरह उनपर बाणों और शक्तियों का मेंह वर्षाने लगे ॥ २९ ॥ परन्तु देवीजी

ने उनके चलाये हुये बाण, शूल शक्ति और फरसा इत्यादि को अपने धनुष बाण से काट डाला ॥ ३० ॥ और कालीजी जो देवी जी के ललाट से निकली थी अपने शूल और खट्वाङ्ग से असुरों को मारती हुई उस रणमें विचरने

याऽधमात्तधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३० ॥ तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् । खट्वांगपोथितांश्चारीन्कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ ३१ ॥ कमंडलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः । ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्येन येन स्म धावति ॥ ३२ ॥ माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।

लगीं ॥३१॥ और ब्रह्माजी की शक्ति उस रणमें घूम घूम कर अपने कमण्डलु का पानी छिड़क छिड़क कर उन असुरों का बल और तेज हरण करती थीं ॥३२॥

इसी तरह माहेश्वरी क्रोधयुक्त अपने त्रिशूल से और वैष्णवी अपने चक्र से और कौमारी अपनी शक्ति से दैत्यों को मारती थीं ॥ ३३ ॥ और ऐन्द्रीके वज्रपात से हजारों दैत्य और दानव कटे हुये रुधिर प्रवाह करते हुए पृथ्वी पर

दैत्यान् जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३३॥ ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः । पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३४ ॥ तुंडप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः । वाराहमूर्त्यान्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३५॥ नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयन्ती महासु-

गिर पड़े थे ॥ ३४ ॥ और वाराही के तुण्ड के प्रहार से विध्वस्त और उनके दन्ताग्र से छाती फट फट कर और चक्रकी मारसे टुकड़े टुकड़े हो हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े थे ॥ ३५ ॥ और कितने असुरों को नारसिंही अपने नखों से फाड़

फाड़ कर खाती थीं और उस रणभूमि में टहल टहल कर अपने गर्जनाका शब्द दशो दिशा में पहुँचाती थीं ॥ ३६ ॥ और कितने असुर महाप्रचण्ड अट्टहास से डरकर और उन शिव दूती के शूल से कटकट कर पृथ्वी के ऊपर गिर जाते

रान् । नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥ ३६ ॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः । पेतुः पृथिव्या-
म्पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥ ३७ ॥ इति मातृगणं
क्रुद्धं मर्दयन्तम्महासुरान् । दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्दे-
वारिसैनिकाः ॥ ३८ ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वा दैत्यान्मातृ-

थे और उनको वह खा जाती थीं ॥ ३७ ॥ इसी तरह उन महाअसुरों को तरह तरह के उपायों से शक्तियों ने मार डाला और जो कुछ असुरों को सेनाबाकी

रहगई वह शक्तियों का कोप देखकर भाग गई ॥३८॥ उन शक्तियों से पीड़ित होकर भागते हुये दैत्यों की सेना को देखकर बड़े कोपके साथ रक्तबीज नाम असुर उस संग्राम में लड़ने के वास्ते उपस्थित हुआ ॥ ३९ ॥ और उसका

गणार्दितान् । योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥ रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः । समुत्पतति मेदिन्यास्तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥४०॥ युयुधे सगदापाणिरिन्द्र-शक्त्या महासुरः । ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडय-

स्वभाव ऐसा था कि घाव लगने से जितने बूँद रुधिर के उसके शरीर से पृथ्वी में गिरें उतने ही असुर उसके समान उत्पन्न हो जायँ ॥ ४० ॥ तात्पर्य यह है कि वह रक्तबीज महाअसुर हाथमें गदा लेकर इन्द्र की शक्ति से लड़ने

लगा तथा इन्द्रकी शक्ति ने अपने वज्रसे रक्तबीज को मारा ॥४१॥ उस वज्र के घाव लगने से जितने बूँद रुधिर के शरीर से पृथ्वी पर गिरे उतने ही असुर रक्तबीज के समान उसी समय प्रगट हो गये ॥ ४२ ॥ अर्थात् जितने रक्तविन्दु

त॥४१॥कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् । समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ४२ ॥ यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः । तावन्तः पुरुषाजाता स्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४३॥ ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्त-सम्भवाः। सममातृभिरत्युग्रं शस्त्रपातातिभीषणम्॥४४।

उसके शरीरसे निकलते थे उतनेही पराक्रमी असुर रक्तबीजके समान उत्पन्न होते थे ॥ ४३ ॥ और वे सब असुर उन शक्तियोंके साथ लड़ते थे ॥ ४४ ॥ जब

इन्द्र की शक्तिने अपने वज्र से रक्तबीजका शिर काट डाला तब उसके शरीरसे बहुत सा रुधिर पृथ्वी पर गिरा और उस रुधिर से हजारों असुर उसके समान उत्पन्न हुये ॥४५॥ और वे सब इन्द्रकी शक्तिके सामने से भागकर जब वैष्णावी

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा। ववाह रक्तम्पुरुषा-स्ततोजाताः सहस्रशः ॥४५॥ वैष्णावीसमरे चैनं चक्रेणा-भिजघान ह। गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥ ४६ ॥ वैष्णावीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः। सह-स्रशोजगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ ४७ ॥ शक्त्या

के सामने गये तो वैष्णावी ने अपने चक्र और गदा से उसको मारा ॥ ४६ ॥ उस वज्रका घाव लगने से जितना रुधिर उसके शरीर से गिरा उनसे भी हजारों रक्तबीज उत्पन्न हुये और सम्पूर्ण लोक उन रक्तबीजों से भर गया ॥४७॥ फिर

उन रक्तबीज महाअसुरों को कौमारी ने अपने शक्ति से और वाराहीने अपने खड्ग से और माहेश्वरी ने अपने त्रिशूल से मारना शुरू किया ॥ ४८ ॥ और

जघान शक्त्या कौमारी वाराही च तथासिना । माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजम्महासुरम् ॥ ४८ ॥ स चापि गदया दैत्यस्सर्वा एवाहनत्पृथक् । मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ ४६ ॥ तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि । पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छ-

उधर से उन रक्तबीज महासुरोंने भी उन शक्तियों को अलग करके मारना शुरू किया ॥ ४६ ॥ निदान शक्ति और शूल आदि से जितने शरीर उन रक्तबीज

असुरों के घायल हुए उतने ही उनके रुधिर से रक्तबीज सब उत्पन्न हुए ॥५०॥ यहां तक कि उन रक्तबीज असुरों से सम्पूर्ण पृथ्वी भर गई, यह दशा देख कर

तशोसुराः ॥ ५० ॥ तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् । व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५१॥ तान्विषण्णान् सुरान्दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरम्। उवाच कालीञ्चामुण्डे विस्तीर्णंवदनं कुरु ॥ ५२ ॥ मच्छस्त्र-पातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्। रक्तबिन्दोःप्रतीच्छ

देवताओं को भय उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ तब चण्डिका देवी देवताओं को त्रासित देखकर कालीजी से कहने लगीं कि तुम अपना मुख फैलाओ ॥५२॥ मेरे शस्त्रके घाव के द्वारा, रुधिर गिरने से जितने असुर

लोग उत्पन्न हों उन सबको खा जाया करो और फिर उनका रुधिर पृथ्वी पर गिरने न पावे चाट जाया करो ॥ ५३ ॥ और जितने महाअसुर रुधिर से उत्पन्न हुये हैं उन सबको घूमघूमकर खा जाया करो इस तरह से वे दैत्य क्षय होजायँगे

त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥५३॥ भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् । एवमेष क्षयन्दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥५४॥ भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा नचोत्पत्स्यन्ति चापरे । इत्युक्त्वा तान्ततो देवी शूलेनाभिजघान तम्॥५५॥ मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् । ततोसावाज-

॥ ५४ ॥ तब फिर और असुर पैदा न होंगे यह सब बातें कालीजी को समझा कर देवीजी ने रक्तबीजको शूल से मारा ॥५५॥ और जो रुधिर उसके शरीर से निकला उसको कालीजी ने मुख में ले लिया पृथ्वी के ऊपर गिरने न दिया तब

रक्तबीज ने कोप करके देवीजी के ऊपर गदा चलाया ॥ ५६ ॥ परन्तु उस गदाने देवीजी के ऊपर कुछ असर न किया और देवीजी के वार करने से जो

घानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥५६॥ नचास्या वेदना-ञ्चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि । तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ ५७ ॥ यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति। मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुरान् ॥५८॥ तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।

रुधिर उसके शरीर से निकलता था ॥५७॥ उस रुधिर को चामुण्डा देवी मुख में ले लेती थीं और उससे जो असुर चामुण्डा देवी के मुखमें उत्पन्न होते थे ॥ ५८ ॥ उनको चबा जाती थीं इस तरह से जो असुर रुधिर से उत्पन्न हुए थे

वे सब समाप्त हो गये तब भगवती ने असल रक्तबीज को शूल और वज्र और बाण और खड्ग और ऋष्टि से मारा ॥ ५६ ॥ इस तरह जब चामुण्डादेवी ने उसका रुधिर पी लिया और देवीजी ने उसको शस्त्रोंसे मारा तब वह रक्तबीज

देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥५६॥ जघान रक्तबीजन्तं चामुण्डापीतशोणितम् । स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥ ६० ॥ नीरक्तश्च महीपाल रक्त-बीजो महासुरः। ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप॥६१॥

नीरक्त होकर पृथ्वीके ऊपर मरकर गिर पड़ा ॥ ६० ॥ मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जब रक्तबीज मर गया तब देवता लोग अतुल हर्षको प्राप्त हुये॥६१॥

और सब शक्तियाँ रुधिर पी पीकर उस समर भूमि में उनसे उत्पन्न हो कर नृत्य करने लगीं ॥ ६२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

तेषाम्मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ६२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

राजोवाच । विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्भवता मम । देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥१॥

राजा सुरथ ने कहा कि हे भगवन् ! देवीजी के चरित्र प्रभाव और रक्तबीज की लड़ाई तथा उसके वध होनेकी आश्चर्य कथा तो आपने वर्णन की ॥ १ ॥

अब रक्तबीजके मरनेपर क्रोध संयुक्त शुम्भ और निशुम्भने जो काम कियाहो वह मैं सुना चाहता हूँ वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जब

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते। चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥ २ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते । शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥ ३ ॥ हन्यमानम्महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् । अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्यया-

उस लड़ाईमें रक्तबीज और अन्य असुर सब मारे गये तब शुम्भ और निशुम्भ कोप संयुक्त ॥३॥ अपनी सेनाके बड़े बड़े वीरों को मरा हुआ देखकर क्रोध में

आकर अपनी मुख्य सेना साथ लेकर देवीसे लड़ने के वास्ते दौड़े ॥४॥ अर्थात् निशुम्भ और उसके साथ चारों तरफ से बड़े बड़े असुर दाँत पीसकर देवीजी के

सुरसेनया ॥ ४ ॥ तस्याग्रतस्तथापृष्ठे पार्श्वयोश्चमहासुराः। सन्दष्टौष्ठपुटाःक्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥ ५ ॥ आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः। निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धन्तु मातृभिः ॥६॥ ततो युद्धमतीवासीद्देव्याःशुम्भनिशुम्भयोः । शरवर्षमतीवोग्रं

मारने के वास्ते चले ॥ ५ ॥ इसी तरह शुम्भ भी अपनी सेना साथ लेकर रण भूमि में चण्डिका देवी को मारने के वास्ते आया ॥ ६ ॥ और देवीजी के साथ

दोनों ने बड़ा युद्ध किया, दोनों ओर से बाणों का मेह बरसता था ॥ ७ ॥ शुम्भ और निशुम्भ के चलाये हुये बाणों को चण्डिका देवी ने अपने बाणोंसे काटकर अपना बाण उन सब पर मारा ॥ ८ ॥ तब निशुम्भ ने भी एक हाथ में ढाल और

मेघयोरिव वर्षतोः ॥ ७ ॥ चिच्छेद ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिकास्वशरोत्करैः । ताडयामासचाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥८॥ निशुम्भो निशितं खड्गं चर्मचादाय सुप्रभम् । अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्यावाहनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् । निशुम्भस्याशु

दूसरे हाथ में तलवार लेकर पहिले देवी के वाहन सिंहपर मारा ॥ ९ ॥ देवी जी ने सिंह को उस घाव से पीड़ित देखकर शीघ्र ही अपने बाणसे निशुम्भ को तलवारको और उसको ढालको भी जिसमें रत्नोंके आठ चन्द्रमा बने हुयेथे, काट

डाला॥१०॥तब निशुम्भने शक्ति चलाई देवीजी ने उस शक्तिको भी अपने चक्र से दोटुकड़े कर डाला॥११॥तब निशुम्भने क्रोधकरके देवीजीपर शूलचलाया देवीजीने

चिच्छेद चर्मचाप्यष्टचंद्रकम् ॥ १० ॥ छिन्ने चर्मणि-खड्गे च शक्तिञ्चिक्षेप सोऽसुरः । तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥ ११ ॥ कोपाध्मातो निशुम्भोथ शूलं जग्राह दानवः । आयान्तम्मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥ १२ ॥ आविद्ध्याथ गदां सोपि चिक्षेप चण्डिकांप्रति । सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ १३ ॥ तत

उस शूलको भी अपने मुष्टिसे चूरचूर करडाला॥१२॥फिर उसने चण्डिकापर गदा चलायी उस गदाको भी देवीने त्रिशूलसे काटडाला॥१३॥तबवहदैत्यहाथमें फरस

लेकर दौड़ा फिर तो देवीजी ने उसको बाणों से मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥१४॥ उस शूरवीर निशुम्भकोपृथ्वीपर गिराहुआ देखकर उसका बड़ाभाई शुम्भ अत्यन्त क्रोध युक्त होकर अम्बिका देवी से लड़ने के वास्ते आया ॥ १५ ॥ वह

परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् । आहत्य देवी बाणौघ-रपातयत भूतले ॥ १४॥ तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे। भ्रातर्यतीवसंक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥ १५ ॥ सरथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः । भुजै-रष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषम्बभौनभः ॥ १६ ॥ तमायान्तं

शुम्भ बहुत ऊंचे रथ पर सवार हो कर बड़ी बड़ी आठों भुजाओं में अस्त्र और शस्त्रादि धारण किये हुए और उसके सम्पूर्ण आकाश को प्रकाशित करता हुआ रण भूमि में पहुँचा॥ १६ ॥ उसको आते हुये देखकर देवीजी ने शंख बजाया

और अपने धनुष को चढ़ाया जिससे बड़े गर्जन का शब्द हुआ ॥ १७ ॥ और फिर उनके घण्टे का शब्द दशोंदिशाओं में फैल गया जिससे सबको मालूम हुआ कि अब देवीजी दैत्यों की सेना को मारेगी ॥ १८ ॥ तत्पश्चात् सिंह गर्जा

समालोक्य देवी शंखमवादयत् । ज्याशब्दञ्चापिधनुषश्चकारातीवदुस्सहम् ॥ १७ ॥ पूरयामासककुभो निजघण्टास्वनेन च । समस्तदैत्यसैन्यानां तेजो वधविधायिनाम् ॥ १८ ॥ ततःसिंहोमहानादैस्त्याजितेभमहामदैः । पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥१९॥ततः

उसके गर्जने से आकाश और पाताल तथा दशोंदिशायें गूँज उठी ॥ १९ ॥ फिर कालीजी ने ऊपर उछल कर दोनों हाथ पृथ्वीपर ऐसा मारा कि जिसका शब्द

पहिले के गर्जन से भी बढ़ गया ॥२०॥ तदनन्तर शिवदूती ऐसे भयङ्कर शब्दसे गर्जी कि असुरों की सेना डर गई और शुम्भ को बड़ा क्रोध हुआ ॥२१॥ जिस समय अम्बिका देवीने शुम्भ से कहा कि हे दुरात्मन् ! खड़ारह, उस समय देवता

काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत । कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्तेतिरोहिताः ॥ २० ॥ अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह । तैश्शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२१॥ दुरात्मंस्तिष्ठतिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा । तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ २२ ॥ शुम्भे-

लोग आकाश से जय जय मनाने लगे ॥ २२ ॥ तब शुम्भ ने आकर बड़ी भारी अग्नि ज्वालाके सदृश एक शक्ति देवीजोके ऊपर चलाई उसको बड़ो भारी उल्का

से देवीजी ने काट डाला ॥ २३ ॥ मेघाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! उस समय शुम्भ ऐसा गर्जा कि उसका शब्द भी दब गया ॥ २४॥ फिर उस समय शुम्भ के

नागत्य या शक्तिर्मुक्ताज्वालातिभीषणा। आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥२३॥ सिंहनादेन शुंभस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्। निर्घातनिस्वनोघोरो जितवानवनीपते ॥ २४ ॥ शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान्। चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोथ सहस्रशः ॥ २५॥ ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।

चलाये हुये हजारों बाणों को देवीजीने बाणोंसे काट डाला और इसी तरह शुम्भ ने भी देवीजी के चलाये हुये बाणों को काट डाला ॥ २५ ॥ तत्पश्चात्

चण्डिका देवीने क्रोधयुक्तहो शूलसे शुम्भ को मारा कि जिससे वह घायल हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २६ ॥ तब तक उधर से निशुम्भ ने चेत में आकर और हाथमें धनुष लेकर कालीजी को और उनके वाहन सिंह को बाणोंसे मारना शुरू

स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥२६॥ ततो निशुम्भस्सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः । आजघान शरैर्देवीं कालीं केशरिणं तथा ॥२७॥ पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः । चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥२८॥ ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिना-

किया ॥ २७ ॥ फिर दश हजार बाहु धारण करके और उन सब हाथों में चक्र ले कर चण्डिका देवी को आच्छादित कर दिया ॥ २८ ॥ तब उस भगवती दुर्गा

दुर्गति की नाश करने वाली ने क्रोध से उस चक्र को और उसके हाथके धनुष को अपने बाणों से काट डाला ॥२९॥ तत्पश्चात् निशुम्भ जल्दी से दैत्यों की सेना साथ ले कर हाथों में गदा लिये हुये चण्डिका के वास्ते दौड़ा ॥ ३० ॥ उसके

शिनी । चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैस्सायकांश्चतान् ॥ २९ ॥ ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् । अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३०॥ तस्यापतत एवाशु गदाञ्चिच्छेद चण्डिका । खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३१॥ शूलहस्तं समायान्तं निशु-

आते ही उसकी गदा को चण्डिकाने तीव्र खड्ग से काट डाला तब उसने शूल उठा लिया ॥ ३१ ॥ शूल हाथ में ले कर जब निशुम्भ सामने आया

तब चण्डिका ने तत्काल ही उसकी छातीमें अपना शूल मारा ॥३२॥ उस शूल के लगने से उसकी छातीसे एक दूसरा महापराक्रमी दैत्य प्रगट होकर 'खड़ीरह'

म्भममरार्दनम् । हृदि विव्याध शूलेन हृदयान्निस्सृतोपरः। महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥ ३३ ॥ तस्य निष्क्रामतोदेवी प्रहस्यस्वनवत्ततः। शिरश्चिच्छेदखड्गेन ततोसावपतद्भुवि ॥ ३४ ॥ ततः सिंहश्चखादोग्रदंष्ट्रा

कहता हुआ निकला ॥ ३३ ॥ उसके प्रगट होने पर देवीजी बहुत हँसी और बोलता हुआ शिर खड्ग से काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया॥३४॥तब सिंह और

काली और शिवदूती उन असुरों के कटे हुये शिर और लोथको खा गई ॥३५॥ कितने महा असुर तो कौमारी की शक्ति से कट गये और कितने असुर ब्रह्माणी के मन्त्रित जल फेंकने से भस्म हो गये ॥३६॥ इसी तरह कितने असुर माहे-

न्तुराणशिरोधरान् । असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूतीतथा-परान् ॥ ३५ ॥ कौमारी शक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महा-सुराः । ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३६॥ माहेश्वरी त्रिशूलेन भिन्नाःपेतुस्तथापरे । वाराही तुण्ड-घातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥ ३७ ॥ खण्डं खण्डञ्च

श्वरीके त्रिशूल से कट कर गिर पड़े और कितने वाराही के तुण्ड से चूरचूर हो कर मर गये ॥३७॥ और कितने दानव वैष्णवी के चक्रसे टुकड़े टुकड़े हो गये

और कितने असुर इन्द्राणी के हाथ से वज्रकी चोट खाकर मर गये ॥३८॥ इस तरह बहुत असुर मारे गये और बहुतेरे रणसे भाग गये और कितनोंको काली और शिवदूती के सिंहने खा लिया ॥ ३९ ॥

चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रवि-मुक्तेन तथापरे ॥३८॥ केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा म-हाहवात् । भक्षिताश्चापरे काली शिवदूतीमृगाधिपैः॥३९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इतनी कथा कह कर मेधाऋषि कहने लगे कि हे सुरथ! शुम्भ अपने भाई निशुम्भ को सेना सहित मरा हुआ देख कर क्रोध संयुक्त हो कर भगवती से कहने लगा ॥ १ ॥ कि हे दुर्गे! तुम अपने बलका घमण्ड मत करो शक्तियों

ऋषिरुवाच॥ निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्। हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः॥१॥ बलावलेपादुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह। अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे यातिमानिनी॥२॥ देव्युवाच॥ एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा। पश्यैता दुष्ट मय्येव

के बलसे लड़ती हो और अपने को महाबलवती समझती हो ॥ २ ॥ देवी जीने कहा कि हे दुष्ट! इस जगत् में मैं अकेली हूँ, कोई शक्ति मुझसे अलग नहीं

है। ये सब शक्तियाँ मेरे विभव से हैं इन सब को मेराही शरीर समझ ॥ ३ ॥ इतनी बात कहने पर ब्रह्माणी इत्यादि सब शक्तियाँ अम्बिका देवी के शरीर में मिल गईं उस समय अम्बिका देवी अकेली रह गईं ॥४॥ और कहने लगीं कि

विशन्त्यो मद्विभूतयः॥३॥ ततःसमस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणी प्रमुखालयम्। तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥४॥ देव्युवाच॥अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदा स्थिता। तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव॥५॥ ऋषिरुवाच॥ ततः प्रववृते युद्धं देव्याश्शुम्भस्य चोभयोः।

मैं जो इस रण में बहुत रूप धारण किये हुये थी अब उन सब रूपों को मैंने अपने शरीर में मिला लिया। और देख अब मैं अकेली रणमें खड़ी हूँ तू भी

खड़ा रह ॥ ५ ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! देवता और असुर सब अलग से देखते रहे । देवीजी और शुम्भमें बड़ा युद्ध होने लगा ॥ ६ ॥ और कठिन २ बाणों और दूसरे अस्त्र शस्त्रोंकी ऐसी बौछार पड़ने लगी कि सम्पूर्ण

पश्यतां सर्वदेवानामसुराणाञ्च दारुणम्॥६॥ शरवर्षैः शितैश्शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः । तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयंकरम् ॥ ७ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका । बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ ८ ॥ मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।

लोक भयभीत हो गये ॥ ७ ॥ अम्बिका देवीने जो सैकड़ों अस्त्र चलाये उन सबको दैत्योंके मालिक शुम्भने अपने अस्त्रों से काट डाले ॥८॥ इसी तरह उस

के भी चलाये हुये अस्त्रों को परमेश्वरी ने हुङ्कार शब्द उच्चारण करके खेलकी तरह काट डाले ॥ ६ ॥ तब उस असुरने सैकड़ों बाणों से देवीजी को ढाँकलिया परन्तु देवीजी ने कोप करके उन सब बाणों को काटकर उसके हाथ के धनुष को

बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ ६ ॥ ततश्शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः । सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १० ॥ छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथाशक्तिमथाददे । चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम्॥११॥ ततःखड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानु-

भी काट डाला ॥१०॥ धनुष के कट जाने पर शुम्भने शक्ति उठा ली परन्तु वह शक्तिको चलाने भी न पाया कि देवीजी ने उसको भी चक्रसे काट डाला, और ॥११॥तब शुम्भ खड्गऔर शतचन्द्र ढाल जिसमें सौ चन्द्रमा सूर्यके समान आरे

लगे थे हाथ में लेकर देवीजी की तरफ दौड़ा ॥१२॥ उसके पहुँचते ही देवीजी ने बाणों से उसकी ढाल और तलवार को काट डाला और उसके घोड़े रथ और रथवान् इत्यादि को भी काट डाला ॥१३॥ इन सबके कट जानेपर शुम्भने

मत् । अभ्यधावत तां देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १२ ॥ तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका । धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ १३ ॥ हताश्वः स तदा दैत्यः छिन्नधन्वा विसारथिः । जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥ १४ ॥ चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ।

अम्बिका देवीके मारने के वास्ते बड़ा भारी मुद्गर उठा लिया ॥ १४ ॥ जब वह असुर मुद्गर ले कर चला तब देवीजी ने उसको भी अपने बाणों से काट डाला

तब वह शीघ्रता से मुक्का तानकर दौड़ा ॥ १५ ॥ और जातेही देवीजी की छाती पर जोरसे मारा तब देवीजी ने भी उसकी छातीपर एक तमाचा ऐसे जोर से मारा ॥ १६ ॥ कि वह असुर चक्कर खाकर पृथ्वीके ऊपर गिर पड़ा परन्तु फिर

तथापि सोऽभ्यधावत्तं मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥ १५ ॥ स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः । देव्यास्तञ्चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥ १६ ॥ तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले । स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥ १७ ॥ उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः । तत्रापि सा निरा-

सँभल कर खड़ा हो गया ॥ १७ ॥ और देवीजी को पकड़ कर आकाश में ले गया । परन्तु वहाँ भी चण्डिका देवी बिना रथ इत्यादि के सहारे उस दैत्य से

लड़ने लगीं ॥ १८ ॥ अर्थात् आकाश में चण्डिका देवी और उस दैत्य से ऐसा बाहु युद्ध होने लगा कि जिससे सिद्ध और मुनि लोग डर गये ॥ १९ ॥ फिर तो अंबिका देवीने उस शुम्भ दैत्यको गेंदकी तरह ऊपर फेंक दिया और रोक कर

धारा युयुधे तेन चण्डिका ॥१८॥ नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् । चक्रतुः प्रथमं युद्धम्मुनिविस्मयकारकम् ॥१९॥ ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह । उत्पाट्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२०॥ स क्षिप्तो धरणीम्प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगतः । अभ्यधावत

उसका पाँव पकड़ कर जोरसे घुमाकर पृथ्वीके ऊपर पटक दिया ॥ २० ॥ फिर वह दुष्टात्मा पृथ्वीपरसे सँभल कर उठा और जल्दीसे देवीजी को मक्का मारने के

वास्ते दौड़ा ॥ २१ ॥ तब देवीजीने उस दैत्येश्वर अर्थात् शुम्भकी छाती में शूल मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ २२ ॥ तब वह दैत्य देवीजी के शूल का घाव खाकर पृथ्वीपर गिरतेही मर गया.। उसके गिरने की धमक से समुद्र, द्वीप, पर्वत

दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥२१॥ तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् । जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥२२॥ स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्र-क्षतः । चालयन्सकलाम्पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥२३॥ उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागा संस्ते शमं ययुः ।

इत्यादि सम्पूर्ण पृथ्वी डोल गई ॥२३॥ और पहिले जो आकाशसे लूक इत्यादि गिरता था वह मिट गया, इसी तरह जितनी नदियाँ उलटी बहतीथीं वह सब सीधी

बहने लगीं अर्थात् सब उत्पात मिट गये ॥ २४ ॥ और उस दुरात्मा के मरने के उपरान्त सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न होकर स्थिर हो गया और आकाश भी निर्मल हो गया ॥ २५ ॥ और उसके मरने से देवता लोग भी प्रसन्न होगये

सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥ २४ ॥ ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन्दुरात्मनि । जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलञ्चाभवन्नभः ॥ २५ ॥ ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । बभूवुर्निहते तस्मिन्गन्धर्वा ललितञ्जगुः ॥ २६ ॥ अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरो

और गन्धर्व लोग गीत गाने लगे ॥ २६ ॥ और कोई बाजा बजाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और मन्द सुगन्ध वायु चलने लगा और सूर्य्य का

प्रकाश बढ़ गया ॥ २७ ॥ और अग्नि की ज्वाला जो अत्यन्त शीतल हो रही थी वह भी प्रज्वलित हो गई ॥ २८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

गणाः । ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥२७॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥२८॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भवधोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ऋषिरुवाच । देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा

इतना कह कर फिर मेधाऋषि कहने लगे कि उस शुम्भके मारे जाने पर

इन्द्रके साथ अग्नि आदि देवता लोग आनन्द से सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुये देवीजी की इस प्रकार से स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ कि हे देवि ! आप अपने भक्तों के दुःखको दूर करनेवाली और सब जगत् की माता और सब को

वह्निपुरोगमास्ताम् । कत्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकासि वक्त्राब्जविकासिताशाः ॥ १ ॥ देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतो खिलस्य । प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देविचराचरस्य ॥ २ ॥ आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि । अपां स्वरूप-

ईश्वरी हैं सब कोई आपके वशमें हैं, आप प्रसन्न हो कर इस संसार की रक्षा कीजिये ॥ २ ॥ सम्पूर्ण जगत्को आपही जल होकर आनन्द

देती हैं आपका पराक्रम अत्यन्त बलवान् है ॥३॥ फिर अत्यन्त पराक्रमी वैष्णवी शक्ति होकर इस जगत् का पालन आपही करती हैं और संसारकी कारण परममाया अविद्या आपही हैं कि जिस कर के यह सब जीव मोहित रहते हैं

स्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ ३ ॥ त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजम्परमासि माया। संमोहितं देवि समस्तमेतत्त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति-हेतुः ॥ ४ ॥ विद्याःसमस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः सम-

आपही की प्रसन्नता मुक्तिकी जड़ है ॥ ४ ॥ हे देवि ! संसार में जितनी विद्यायें हैं वह सब आपही हैं और जितनी पतिव्रता स्त्रियाँ हैं वह सब आपही की अंशसे है और एक आपही हैं जो इस संसार के भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है

कोई वस्तु आपसे अलग नहीं है हे देवि ! सिवाय इसके और कौन सी स्तुति आपको हमलोग कर सकते हैं ॥ ५ ॥ जो कोई आपकी स्तुति करता है उसको आप स्वर्ग और मुक्ति देती हैं और सब प्राणियों में आप विराजमान रहती

स्त्राः सकला जगत्सु । त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ॥५॥ सर्वभूता यदा देवी स्वर्ग-मुक्तिप्रदायिनी । त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्त-यः ॥६॥ सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते । स्व-

हैं इस लिए आपकी स्तुतिके वास्ते बहुत कहना उचित नहीं है ॥ ६ ॥ आप सब जीवों के हृदय में बुद्धिरूप हो कर विराजमान रहता हैं इस कारण जीवों को स्वर्ग और मुक्ति देनेवाली आपही हैं नारायण विष्णु भगवान् की आप

शक्ति हैं आपको हम लोग प्रणाम करते हैं ॥७॥ कला और काष्ठा अर्थात् घड़ी और पल इत्यादि जो काल है उसका रूप धारण करके जीवनको अन्ततक पहुँचानेवाली आपही हैं और संसार के नाश करने में भी आप समर्थ हैं । हे

र्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥७॥ कलाकाष्ठादि-रूपेण परिणामप्रदायिनि । विश्वस्यौपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तुते ॥८॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थ-दायिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥९॥

नारायणि ! आपको प्रणाम है ॥ ८ ॥ और सब मङ्गलों का रूप आपही हैं कल्याण और सम्पूर्ण अर्थों को सिद्ध करनेवाली और शरण देनेवाली त्रिनयनी गौरी आपही हैं। हे नारायणि ! आपको हमलोग प्रणाम करते हैं ॥९॥ ब्रह्मा, विष्णु

और महेश इन तीनों देवताओंमें उत्पत्ति, पालन और प्रलय करने वाली शक्ति होकर आपही विराजमान रहती हैं और आप नित्या हैं और महदादि गुणों की आप आधार हैं और तीनों गुणों से आप संयुक्त हैं हे नारायणि ! आपको हम सबका प्रणाम है ॥ १० ॥ जो दुःखी लोग आपको शरण में आते हैं

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि। गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥१०॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ॥सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥११॥ हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि। कौशाम्भःक्षरिके

उनको आप रक्षा करती हैं। आप सब जगत्‌को पीडा हरण करने वाली हैं हे नारायणि देवि ! आपको नमस्कारहै॥११॥हंसयुक्त विमानपर बैठकर ब्रह्माणी रूप धारण किये हुये कमण्डलुका जल छिड़कनेवाली नारायणीको हमलोगों का

प्रणाम है ॥ १२ ॥ माहेश्वरीरूप त्रिशूल और चन्द्रमा तथा नागराज शेष को धारण किये हुये बैलपर सवार जो नारायणी हैं उनको हम सब नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥ कौमारी शक्तिरूपको धारण करके मोर पर चढ़ी हुई पाप रहित

देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥१२॥ त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि । माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तुते ॥१३॥ मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे । कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तुते ॥ १४ ॥ शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे । प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽ-

महाशक्ति धारण करनेवाली नारायणी को प्रणाम है ॥ १४ ॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, अस्त्रों को धारण किये हुये वैष्णवी शक्तिको धारण करने वाली

नारायणीको प्रणाम है। हे नारायणि! हम सबों पर प्रसन्न हूजिये ॥ १५ ॥
और वाराहरूप धारण किये हुये महाचक्र हाथमें लेकर दाँतोंसे पृथ्वी को उठाने
वाली और कल्याण देनेवाली नारायणीके रूपको हम सब प्रणाम करतेहैं ॥१६॥

स्तुते ॥ १५ ॥ गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
वाराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तुते ॥१६॥ नृसिं-
हरूपेणोग्रेण हन्तुन्दैत्यान्कृतोद्यमे । त्रैलोक्यत्राणसहिते
नारायणि नमोऽस्तुते ॥ १७ ॥ किरीटिनिमहावज्रे सह-
स्रनयनोज्ज्वले । वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽ-

और दैत्योंके मारने और तीनोंलोककी रक्षा करनेके वास्ते जो आपने नृसिंहरूप
धारण किया था आपके रूपको हे नारायणि! नमस्कार है ॥ १७ ॥ और

किरीट धारण करके महावज्र हाथ में लेकर आंखों से प्रकाश मान हो कर वृत्रासुरके प्राण हरण करनेवाली इन्द्रकी शक्तिरूप आपको हे नारायणि ! नमस्कार है ॥ १८ ॥ और शिवदूती स्वरूप धारण करके दैत्यों का बल नाश करने वाली

स्तुते ॥ १८ ॥ शिवदूती स्वरूपेण हतदैत्ये महाबले। घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तुते ॥१९॥ दंष्ट्राकरालबदने शिरोमालाविभूषणे। चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तुते ॥२०॥ लक्ष्मिलज्जे महाविद्ये

भयानक रूप होकर भयानक शब्द करने वाली नारायणी को प्रणाम है ॥ १९ ॥ और बड़े बड़े दाँत निकले हुये भयावनी सूरत मुण्डमाल पहिने हुये चण्ड मुण्डको मारने वाली चामुण्डारूप आपको हे नारायणि ! नमस्कार है॥२०॥लक्ष्मी, लज्जा,

महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा और सब को मोहित करनेमें समर्थ महामायारूप आपको हे नारायणि ! नमस्कार है ॥२१॥ सब वस्तु धारण करने वाली बुद्धि, सरस्वती उत्तम ऐश्वर्य, रजोगुण, और तमोगुण युक्त, मूलशक्ति जो आप सर्व

श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे । महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तुते ॥ २१ ॥ मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि । नियते त्वम्प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तुते ॥२२॥ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो

समर्थ हैं हे नारायणि ! प्रसन्न हूजिये आपको नमस्कार है ॥२२॥ और सबलोगों में समान रूप और सब से समर्थ और सब शक्तियों से युक्त जो आप दुर्गा देवी हैं प्रसन्न हूजिये और हम लोगोंका भय छुड़ा दीजिये, आपको नमस्कार है

॥ २३ ॥ हे कात्यायनि ! तीन नेत्रों से जो आपका परमशोभित मुख है वह हम लोगोंकी रक्षा सम्पूर्ण संसारी विकारोंसे परे आपको हम सब नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥ हे भद्रकालि ! आपको प्रणाम है आपका त्रिशूल जो

देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ॥ २३ ॥ एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् । पातु नस्सर्वभूतेभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तुते ॥ २४ ॥ ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् । त्रिशूलम्पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तुते॥२५॥ हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् । सा घण्टा

ज्वाला करके भयङ्कर अत्यन्त उग्र असुरों को मारने वाला है वह हम लोगोंकी रक्षा करे ॥२५॥ हे देवि ! आपका घण्टा जिसका शब्द सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त

हो करके दैत्यों के तेजोंको नाश करता है वह हम सबोंकी पुत्रके समान रक्षा करें ॥ २६ ॥ और हे चण्डिके ! आपका उज्ज्वल हाथसे–जो असुरों के मांस व रुधिर से भरा हुआ है, सदा हम लोगों का कल्याण करै, हम लोग आपको प्रणाम करते हैं ॥ २७ ॥ हे देवि ! जिसपर आप प्रसन्न होती हैं उसके

पातु नो देवि पापेभ्यो नस्सुतानिव ॥ २६ ॥ असुरासृ-ग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः। शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वान्नता वयम् ॥ २७ ॥ रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान्सकलानभीष्टान् । त्वामाश्रितानां

रोगों को दूरकर देती हैं और जिसपर आप अप्रसन्न होतीहैं उसकी सब कामनाएँ नाश होजाती हैं और जो कोई आपकी शरणमें रहते हैं उनलोगोंको कभी दुःख नहीं होता और जो लोग आपकी शरण में रहते हैं उन लोगों की शरण पकड़

ने से दूसरे लोग भी सुखी होजाते हैं ॥ २८ ॥ हे अम्बिके देवि ! आपने अनेक रूप धारण करके धर्मद्रोही असुरों का नाश कियाहै आपके सिवाय दूसरा कौन ऐसा करने वाला है ॥ २९ ॥ ज्ञान शास्त्र उपनिषद् और कर्म

न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥२८॥ एतत्कृतं यत्कदनन्त्वयाद्य धर्मद्विषां देविमहासुराणाम् । रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥ २९ ॥ विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या । ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारेविभ्रामयत्येत-

काण्ड के बताने वाले जो वेदके वचन हैं इन सबके होते हुए भी इस संसार के ममतारूपी अघेर कूपमें गिराने वाली सिवाय आपके दूसरा कोई नहीं

है ॥ ३० ॥ जहाँ पर राक्षस महाविष, साँप शत्रु चोर जिस जगह चारों तरफ से आग में घिर कर या समुद्र की लहर में पड़ कर कोई व्याकुल हों इन जगहों पर पहुँचकर जो कोई आपका स्मरण करता है आप वहा पहुँच कर

दतीव विश्वम् ॥ ३० ॥ रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र । दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३१॥ विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् । विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्ति-

उसकी रक्षा करती हैं ॥ ३१ ॥ आप संसार की रक्षा करने से विश्वेश्वरा और संसार के धारण करने से विश्वात्मिका कहलाती हैं और आप को विश्वके

ईश इन्द्रादि देवता और इसी तरह संसार के आश्रित लोग भक्ति पूर्वक नम्र हो कर आपको वन्दना करते हैं ॥ ३२ ॥ हे देवि ! जिसतरह आपने इस समय असुरों को मार कर हम लोगों की रक्षा की है, इसी तरह सर्वकाल हम लोगों की रक्षा कीजिए और सब जगत्के पापोंको क्षय करके उत्पात करनेवालेमहाविघ्नों

नम्राः ॥ ३२ ॥ देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैवसद्यः । पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशुह्युत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ ३३ ॥ प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि । त्रैलोक्य-

कोभी को शमन कीजिये ॥३३॥ हे देवि ! आप संसारकी पीड़ा हरण करनेवाली हैं और तीनों लोकके रहने वाले आपकी स्तुती करते हैं आपके चरणारविन्द में हम लोग प्रणत हैं अब आप प्रसन्न हो कर हम लोगों को वरदान दीजिये

॥ ३४ ॥ इतनी स्तुति देवताओं के मुखसे सुनकर देवी ने कहा कि हे देवताओं तुम लोगों को जो वर माँगना हो मागो, मैं वरदान दूँगी कि जिस से तु लोगों का और सम्पूर्ण जगत् उपकार होगा ॥ ३५ । तब देवता लोग बोले कि हे अ-

वासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३४॥ देव्युवाच ॥ वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ । तं वृणुध्वं प्रय-च्छामि जगतामुपकारकम् ॥ ३५ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वा-बाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि । एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३६॥ देव्युवाच ॥ वैवस्वतेऽ

खिलेश्वरि ! शुम्भ इत्यादि असुरों के मारे जाने से सकल लोक का दुःख नाश हो गया फिर इसी तरह जब कभी हम लोगों को दुःख देनेवाले दुष्ट असुर प्रगट हों तो उन सबका भी आप नाश किया कीजिये ॥ ३६ ॥ यह सुनकर देवी जी ने

कहा कि अट्ठाइसवें चतुर्युगमें वैवस्वत मन्वन्तर प्रगट होने पर जब दूसरा शुम्भ निशुम्भ महाअसुर उत्पन्न होगा ॥ ३७ ॥ उस समय मैं नन्दगोपके घरमें यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होकर उन शुम्भनिशुम्भ महाअसुरों को नाश करूँगी और विन्ध्या

न्तरे प्राप्ते ह्यष्टाविंशतिमे युगे । शुम्भोनिशुम्भश्चैवान्या-
वुत्पत्स्यते महासुरौ ॥ ३७ ॥ नन्दगोपगृहे जाता यशोदा
गर्भसम्भवा । ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवा
सिनी ॥ ३८ ॥ पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ ३९ ॥

चल पर्वत पर निवास करूँगी ॥ ३८ ॥ फिर पृथ्वीतलमें अत्यन्त भयङ्कर रूप धारण करके विप्रचित्ती सन्तानके दैत्योंको मारूँगी ॥ ३९ ॥ और उस विप्रचित्ती सन्तानके

महा असुरोंको भक्षकर खाने से मेरे सब दाँत रुधिर से अनार के फूलकी तरह लाल हो जायँगे॥४०॥ तब मुझको देवता लोग और मनुष्य लोग स्वर्गलोक और मृत्युलोक में हर समय मेरी स्तुति करते हुए रक्तदन्तिका नाम करके कहेंगे

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् । रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥४०॥ ततो मां देवतास्स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः । स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४१॥ भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि । मुनिभिस्संस्तुता भूमौ

॥ ४१ ॥ फिर जब सौ वर्ष तक पृथ्वीपर वर्षा नहीं होगी और कुवाँ इत्यादि में कहीं पानी न रहेगा उस समय मुनि लोग पानी के वास्ते मेरी स्तुति करेंगे

तब मैं पृथ्वी में पार्वती के समान अयोनिजा [अर्थात् आपसे आप] उत्पन्न हूँगी ॥ ४२ ॥ उस समय सौ नेत्र धारण करके उन नेत्रोंसे मुनियों को देखूँगी इस कारण से मनुष्य लोग मेरा नाम शताक्षी रक्खेंगे ॥४३॥ हे देवता लोगों!

सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥ ४२ ॥ ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि सन्मुनीन् । कीर्तयिष्यन्ति मनुजाश्शताक्षीमिति मान्ततः ॥ ४३ ॥ ततोहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः । भरिष्यामि सुराश्शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ ४४ ॥ शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहम्मु-

तब मैं अपने शरीर से शाक उत्पन्न करके उसीसे सब लोगों का पालन करूँगी ॥ ४४ ॥ तब पृथ्वी में मेरा नाम शाकम्भरी विख्यात होगा, फिर उसी शाकम्भरी

अवतार में दुर्ग नाम असुर को बध करूँगी ॥ ४५ ॥ तब मेरा नाम दुर्गा देवी प्रसिद्ध होगा फिर मैं हिमाचल पर्वत पर भयङ्कर रूप से प्रगट होकर ॥ ४६ ॥

वि । तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यम्महासुरम् ॥ ४५ ॥ दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति । पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥ ४६ ॥ रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् । तदा मां मुनयस्सर्वे स्तोष्यन्त्या नम्रमूर्तयः ॥ ४७ ॥ भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति । यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां

मुनि लोगों की रक्षा के वास्ते राक्षसों का भक्षण करूँगी तब मुनि लोग शिर झुका कर मेरी स्तुति करेंगे ॥ ४७ ॥ तब मेरा नाम भीमा देवी विख्यात होगा फिर

जब तीनों लोक में अरुण नाम असुर महाबाधक उत्पन्न होगा ॥ ४८ ॥ तब मैं भ्रामरी रूप जिसमें असंख्य भौंरा मेरे चरण में लिपटे होंगे धारण करके उपकार के लिये अरुण दैत्य को मारूँगी ॥४९॥ उस समय मेरा नाम भ्रामरी प्रचलित

करिष्यति ॥ ४८ ॥ तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् । त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥४९ भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः । इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥५०॥ तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ५१ ॥

होगा और सब जगह सब लोग मेरी स्तुति करेंगे इसी तरह जब जब दैत्यों से तुम लोगों को दुःख पहुँचेगा ॥ ५० ॥ तब तब मैं इस पृथ्वी में उत्पन्न होकर तुम लोगों के शत्रुओं का नाश करूँगी ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये नारायणी स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इतना वरदान देकर देवीजी बोली कि हे देवता लोगों ! इस स्तोत्र से जो

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये नारायणीस्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

देव्युवाच ॥ एभिस्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यस्समाहितः ॥ तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ १ ॥ मधुकैटभनाशञ्च महिषासुरघातनम् ॥ कीर्त-

कोई चित्त स्थिर करके नित्य मेरी स्तुति करेगा। उसका दुःख मैं निस्सन्देह नाश कर दूँगी ॥ १ ॥ जो कोई मधुकैटभका नाश और महिषासुरका बध और

शुम्भ निशुम्भके मरण की कथा पढ़ेगा ॥ २ ॥ अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी को एक चित्त होकर मेरे इस उत्तम माहात्म्य को सुनेगा ॥ ३ ॥ उसको

थिष्यान्ति ये तद्वद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥२॥ अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ॥ श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥ न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः । भविष्यति न दारिद्र्यं नचैवेष्टवियोजनम् ॥ ४ ॥ शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः । नशस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भ-

किसी प्रकार का पाप और दरिद्रता न होगा, उसको इष्ट और मित्र से कभी वियोग न होगा ॥ ४ ॥ और उसको शत्रुओं, चोरों, राजाओं, हथियार, अग्नि

और जल से किसी तरह का भय न होगा ॥ ५ ॥ इस लिए मेरे माहात्म्य को पढ़ना और सुनना चाहिए क्योंकि यह माहात्म्य कल्याण कारक मार्ग है ॥ ६ ॥ और महामारी से उत्पन्न उपसर्गों को और दैहिक, दैविक और

विष्यति ॥ ५ ॥ तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः । श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ ६ ॥ उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् । तथा त्रिविधमुत्पातम्माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ७ ॥ यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम । सदा न

भौतिक तीनों तरह के उत्पातों को मेरा माहात्म्य शान्त करता है ॥ ७ ॥ और जिस घर में मेरा यह माहात्म्य नित्य पढ़ा जायगा मैं उस घरमें हमेशा रहकर

उससे कभी अलग न रहूँगी ॥ ८ ॥ बलिप्रदान, पूजा, होम और पुत्र के जन्म और विवाहादि मङ्गलों में इस मेरे चरित्र को पढ़ना और सुनना

तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ८ ॥ बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे । सर्वम्ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ ९ ॥ जानताजानता वापि बलिपूजान्तथा कृताम् । प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमन्तथा कृतम् ॥ १० ॥ शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी । तस्याम्ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्ति-

चाहिये ॥९॥ ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी हो जो कोई बलिप्रदान और पूजा और होम करे उसको भी मैं प्रीतियुक्त मानती हूँ ॥ १० ॥ और शरत्कालमें मेरी

पूजा जो प्रतिवर्ष की जाती है उसमें इस मेरे माहात्म्य को श्रद्धाके साथ जो कोई सुनेगा ॥ ११ ॥ वह मनुष्यसब दुःखों से छूट कर मेरे प्रसाद से अन्न, धन और पुत्र इत्यादि को पावेंगे इसमें किसी तरहका सन्देह न करना

समन्वितः ॥ ११ ॥ सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः । मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ १२ ॥ श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयश्शुभाः । पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥ १३ ॥ रिपवस्संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते । नन्दते च कुलं पुंसां

चाहिये ॥ १२ ॥ और मेरे इस माहात्म्य और मेरी उत्पत्ति और मेरेपराक्रमको सुनकर मनुष्य लोग निर्भय हो जायँगे ॥ १३ ॥ और जो पुरुष मेरे इस माहा-

त्म्य को जो लगा कर सुनेंगे उन लोगों के शत्रु लोग नष्ट हो जायँगे और उस सुनने वाले का कल्याण होगा और उसके कुलकी बढ़ती होगी ॥ १४ ॥ शान्ति कर्ममें, दुःख में और ग्रह पीड़ामें इसमेरे माहात्म्यको सुनना चाहिये ॥ १५ ॥

माहात्म्यं मम शृणवताम् ॥ १४ ॥ शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने । ग्रहपीड़ासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ १५ ॥ उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः । दुःस्वप्नञ्च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १६ ॥ बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्ति-

इसके सुनने से महामारी से उत्पन्न सब उपसर्ग और भयंकर ग्रहपीड़ा सब सुगम हो जाती है और दुःस्वप्नका दोष भी मिट जाता है ॥ १६ ॥ और पूतना

इत्यादि बालग्रहों से ग्रसित बालकों के वास्ते यह मेरा माहात्म्य शांतिकारक है और जो मनुष्यों के आपस में बिगाड़ हो गया हो तो इस मेरे माहात्म्यके पढ़ने से मिलाप हो जाता है ॥ ७ ॥ और फिर यह मेरा माहात्म्य बाघ वगैरह दुष्ट

कारकम् । संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७॥ दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् । रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ १८ ॥ सर्वम्ममैतन्माहात्म्यं ममसान्निधिकारकम् । पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथो-

जानवरों का बल नाश कर देता है और भूत और पिशाचोंका भी इसके पढ़ने से नाश हो जाता है ॥ १८ ॥ और यह संपूर्ण मेरा माहात्म्य सन्निधि करने वाला

बलिदान पुष्पाञ्जलि और अर्घ्य और गन्ध, दीप ॥ १६ ॥ ब्राह्मणों को भोजन कराने, होम और वर्ष दिनतक रात दिन पञ्चामृतसे स्नान कराने और उनको वस्त्र भूषण देने से जितना मनुष्यों पर मैं प्रसन्न होती हूँ ॥ २० ॥

त्तमैः ॥ १६ ॥ विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥ २० ॥ प्रीतिर्मे क्रियते तस्मिन्सकृत्सुचरिते श्रुते ॥ श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति ॥ २१ ॥ रक्षां करोति भूतेभ्यो

उतना जो एक दिन मेरे चरित्र को सुनता है उस पर मैं प्रसन्न होती हूँ। जिस समय मेरे चरित्र को कोई सुनता है उसी समय उसका पाप नाश हो जाता है और उसके शरीर का दुःख छूट जाता है ॥ २१ ॥ औरमेरे जन्मके चरित्र सुन-

ने से मनुष्योंकी भूत और पिशाचादि से रक्षा होती है और समर में दैत्यों के नाश करने के वास्ते मैंने जो जो चरित्र किये हैं ॥ २२ ॥ उनके सुनने से मनुष्यों को शत्रुओं से भय नहीं होता फिर हे देवता लोगों ! आप और ऋषि लोगों ने

जन्मनां कीर्तनम्मम। युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥२२॥ तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते। युष्माभिस्स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ २३ ॥ ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभाम्मतिम्। अरण्ये

जो मेरी स्तुति की है ॥ २३ ॥ तथा ब्राह्मणों ने मेरी स्तुति की है उसके सुनने और पढ़ने से मनुष्यों को उत्तम ज्ञान होता है फिर उस वनमें जहाँ मनुष्य चारों ओर से अग्नि से घिर गया हो या कहीं भयावनी जगह में अकेले पड़

गया हो॥२४॥ या चारों ओरसे चोरोंने घेर लिया हो या किसी जङ्गल में बाघ या सिंह या जङ्गली हाथीको चपेट में आ गया हो ॥२५॥ या राजाने मारने का हुक्म दिया हो या कैद में पड़ गया हो या नाव पर चढ़ कर हवामें पड़ कर महा जला-

प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ २४ ॥ दस्युभिर्वावृतश्शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः । सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः॥ २५ ॥ राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बंधगतोपि वा । आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ २६ ॥ पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे । सर्वा-

र्णवमें घूमता हो या कहीं नाव फँसकर न छूटती हो ॥ २६ ॥ या कहीं लड़ाई में उस पर हथियारों का मेह बरसता हो या कैसे ही घोर उपद्रव में पड़ा हो

॥२७॥ तो इस मेरे चरित्र को स्मरण करने से उन सब दुःख और उपद्रवों से छूट जायगा और मेरे प्रभाव से सिंह और चोर आदि सब दुष्ट ॥२८॥ दूरही सेभाग जाएँगे। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! भगवती यह सब बातें देवताओं

बाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥ २७ ॥ स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात। ममप्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥ २८ ॥ दूरादेव पलायंते स्मरतश्चरितं मम ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ २९ ॥ पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधी-

से कह कर ॥ २९ ॥ देखतेही देखते देवताओं की दृष्टि से अन्तर्धान होगई और देवता लोग निर्भय होकर पहिले की तरह अपना अपना अधिकार बर्तने

लगे ॥ ३० ॥ और निस्सन्देह अपना अपना यज्ञ भाग लेने लगे अर्थात् जब देवोने शुम्भ को मार डाला ॥ ३१ ॥ और अतुल पराक्रमी जगत् के विध्वंश करने वाले निशुम्भको भी मार लिया तब बाकी जो दैत्य लोग रह गयेथे वे भाग

यत । तेपि देवा निरातंकास्स्वाधिकारान्यथा पुरा॥ ३०॥ यज्ञभागभुजस्सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः । दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि॥ ३१॥ जगद्विध्वंसके तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे । निशुम्भे च महावीर्ये शेषाःपाताल-माययुः ॥ ३२ ॥ एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः

कर पाताल को चले गये ॥ ३२ ॥ हे सुरथ ! देवी नित्या हैं । जब २ देवताओंके ऊपर दुःख पड़ता है तब २ अवतार लेकर जगत् की रक्षा करती हैं ॥ ३३ ॥

और वही भगवती सम्पूर्ण संसार को मोह लेती हैं और वही सबको पैदाकरती हैं फिर वही देवी निष्काम भक्तिपूर्वक पूजन करने से मुक्ति और आत्मतत्व देती हैं और फल प्राप्ति निमित्त पूजा करनेसे प्रसन्न होकर ऐश्वर्य देती हैं॥३४॥

पुनः। संभूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३३ ॥ तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते। सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ ३४ ॥ व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर। महाकाल्यामहाकालेमहामारीस्वरूपया ॥३५॥ सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भ-

मेधाऋषि कहते हैं कि हे राजन्! महाप्रलय में महामारी स्वरूप से जो महाकाली रहती हैं उन्हीं में यह सब ब्रह्माण्ड मिल जाता है ॥३५॥ और वही महाकाली

प्रलयमेंसंहार शक्तिऔरसृष्टिकालमेंसृष्टिशक्ति औरस्थिति कालमेंसनातनीशक्ति होकर पालन करती हैं ॥३६॥ फिर वही भगवती मनुष्यों के घरमें धन को नाश करनेके वास्ते दरिद्र रूप हो जाती हैं ॥ ३७ ॥ और फिर वही महाकाली स्तुति

वत्यजा। स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३६ ॥ भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे। सैवाभावे तथा लक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ३७ ॥ स्तुता संपूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा। ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥ ३८ ॥

और पूजा करने से और फल चढ़ाने और धूप देने से प्रसन्न हो कर धन और पुत्र देती हैं और धर्म करनेसे अच्छी बुद्धि देती हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी माहात्म्ये
भगवती स्तुति वाक्यंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इतना कह कर मेधाऋषि फिर बोले कि हे सुरथ ! यह देवीका प्रभाव और

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्य-
मुत्तमम् । एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत्॥१॥

उत्तम माहात्म्य मैंने कहा वही सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली और पालने-
वाली और नाश करनेवाली हैं ॥१॥ और वही भगवती भगवान् विष्णुकी माया

हैं और वही भगवती साधन तत्वज्ञान को भी देती हैं और हे सुरथ ! उसीदेवीसे आप और यह वैश्य और इसी तरह देव और शास्त्र के जानने वाले भी ॥ २ ॥ मोहित हुए हैं और मोहित रहते हैं और रहेंगे। हे सुरथ ! आप उसी जगत्मो-

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया। तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥२॥ मोह्यन्ते मोहिताश्चै व मोहमेष्यन्ति चापरे। तामुपैहि महाराज शरणं पर- मेश्वरीम् ॥ ३ ॥ आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापव- र्गदा ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति तस्य वचःश्रुत्वा सुरथः

हनी महामाया परमेश्वरी के शरण पकड़िये ॥ ३ ॥ आराधना करनेसे वही देवी मनुष्यों को भोग और स्वर्ग और मुक्ति देती हैं। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे

क्रौष्टुकि! इतनी बातें मेधाऋषि की सुनकर राजा सुरथ ॥ ४ ॥ ममत्व और राज्य छीन जानेके दुःख से व्याकुल होकर महा भाग और महाव्रत मेधा ऋषिको साष्टांग प्रणाम करके ॥ ५ ॥ उस वैश्य समेत तपस्या करनेके वास्ते वहाँसे चले

स नराधिपः ॥ ४ ॥ प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं संशितव्रतम् । निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥५॥ जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने । संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ ६ ॥ स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् । तौ तस्मिन्पुलिने देव्याः कृत्वा

और एक जगह नदी के किनारे पर देवी.जी के दर्शन करने के लिए बैठ गये॥६॥ और देवीजीका देवीसूक्त जपते हुए तपस्या करने लगे अर्थात् देवी का स्वरूप

मिट्टी से बनाकर ॥ ७ ॥ और फूलों का हार बनाकर एक चित्त होकर देवीजी में मन लगा कर धूप दीप होम इत्यादि से पूजन किया ॥८॥ फिर महाराज सुरथ और वैश्य ने अपना २ शरीर काट कर रुधिर निकाल देवीजी को

मूर्तिम्महीमयीम् ॥ ७ ॥ अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः। निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ ८ ॥ ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥ एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ ९ ॥ परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ देव्युवाच ॥ यत्प्रा-

वलिदान दिया। जब इस तरह सब इन्द्रियों को साधकर तीन वर्ष तक पूजन किया ॥ ९ ॥ तब वह जगत् की माता चण्डिका देवी प्रसन्न होकर प्रगट हो और

दर्शन देकर बोली कि हे महराज सुरथ ! हे कुलनन्दन वैश्य ! तुम लोग जो वर चाहते हो ॥ १० ॥ वह सब हमसे तुम लोग पावोगे और मैं प्रसन्न हो कर तुम लोगों को दूँगी । मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! इतनी आज्ञा देवी-

र्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ॥ १० ॥ मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ॥ ११ ॥ अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ।

जी की पाकर सुरथ ने दूसरे जन्ममें बहुत दिनों तक राज्य रहने का वरदान देवी-जीसे माँगा ॥ ११ ॥ और इस जन्म में भी अपने बलसे शत्रुओं को मार कर अपना राज्य अपने वशमें करनेका वरदान देवी जी से माँग लिया । तदनन्तर उस

वैश्य ने भी संसार से विरक्त चित्त होकर देवीजोसे तत्वज्ञान का वरदान मांग लिया ॥ १२ ॥ कि जिससे यह 'मेरा और मैं' ऐसा संग सब छूट जाय। सुरथ और वैश्य के वरदान माँगने पर देवी-जोने कहा कि हे सुरथ! थोड़ेही दिनमें तुम

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ॥ १२ ॥
ममेत्यहमिति प्राज्ञस्सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ देव्युवाच ॥
स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ १३ ॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति । मृतश्च
भूयः संप्राप्य जन्मदेवाद्विवस्वतः ॥ १४ ॥ सावर्णिको

अपना राज्य पावोगे ॥ १३ ॥ और तुम्हारे सब शत्रु नाश होकर राज्य में एक तुम्हारा ही हुक्म चलेगा और दूसरे जन्म में तुम विवस्वान के पुत्र होकर ॥ १४ ॥

सावर्णि नामक के मनु पृथ्वी में होंगे और हे वैश्य ! तुम जो वरदान चाहते हो ॥ १५ ॥ तो वह वरदान मैं देऊँगी । संसिद्धि अर्थात् मुक्ति के लिये तेरा ज्ञान

नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति। वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥१५॥ तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति। मार्कण्डेय उवाच॥ इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम्। बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता॥ १६ ॥ एवं देव्या वरं

होगा । मार्कण्डेय जी कहते हैं सुरथ और वैश्य दोनों करके भक्तिसे स्तुत हुई देवी भगवती यथाभिलषित वरदान को देकर शीघ्र ही अन्तर्धान हो गई ॥१६॥

इस प्रकार देवीसे वरदान पाकर क्षत्रियों में श्रेष्ठ सुरथ सूर्य से उत्पन्न होकर सावर्णि नाम का मनु होगा ॥ १७ ॥

लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः । सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ १७ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानन्नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिकेमन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये भाषानुवादे सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानन्नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

T

अथ देवीसूक्तम् ।

खड्ग,चक्र,गदा,बाण,धनुष,परिघ शूल,भुशुण्डी,शिर और शंख अपनी दशभुजा-ओंसे इन शस्त्र अस्त्र आदिकों को धारण किये,तीन नेत्रोंको धारण किये, संपूर्ण

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघान् शूलं भुशुण्डीं शिरः ॥ शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ॥ नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम् ॥ यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ अथ देवी-

खङ्ग के आभूषणों को धारण किये, नीलमणिकी कांति को धारण किये, और योगनिद्रामें हरिभगवान् के सोते हुए मधुकैटभ दैत्यों के मारने को ब्रह्मा जिस

T

की स्तुति करते थे ऐसी महाकाली का मैं भजन करताहूँ देवता कहने लगे॥ १ ॥ देवो की महादेवी को और शिवाको बारं बार नमस्कार है प्रकृति को और भद्रा को सावधान चित्त से हम नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥ रौद्रा को नमस्कार है और नित्या, गौरी तथा धात्री को नमस्कार है और चंद्रिका रूपा को चन्द्रमा रूपा

सूक्तम् । देवा ऊचुः ॥ १ ॥ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ॥ नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ २ ॥ रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ॥ ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ ३ ॥ कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो

को सुख रूपा को निरन्तर नमस्कार है ॥ ३ ॥ और कल्याणी को हम प्रणति करते हैं और वृद्धिरूपा को तथा सिद्धिरूपा को नमस्कार है और नैर्ऋतिको

राजाओं को लक्ष्मीरूपा की तथा शर्वाणी को नमस्कार है ॥ ४ ॥ दुर्गा को, देवी को महादेवी को और शिवाको वारंवार नमस्कार है प्रकृति को और भद्रा दुर्गस्थलों से पारकरने वाला को, सारा को सर्वकारिणी को, ख्याति को,कृष्णा

नमो नमः । नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ४ ॥ दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥५॥ अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमोनमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ६ ॥ या देवी

को और धूम्रावती को निरन्तर नमस्कार है ॥ ५ ॥ उस अत्यन्त सौम्यरूपा को, अत्यन्त रौद्ररूपाको नम्र होकर हम नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ जो देवी संपूर्ण

T

प्राणियों में विष्णुमाया नामसे कही जाती है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥ ७ ॥ जो देवि सब प्राणियों में चेतना

सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥ या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै

नाम से कही जाती है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥ ८ ॥ जो देवी सब प्राणियों में बुद्धिरूप से शोभायमान है

उसको नमस्कार है ॥ १३ ॥ उसको नमस्कार है ॥ १४ ॥ उसको नमस्कार है ॥ १५ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे स्थित है उसको नमस्कार है॥१६॥ उसको नमस्कार है ॥ १७ ॥ उसको नमस्कार है ॥ १८ ॥ जो देवी सब प्राणियों

नमस्तस्यै ॥ १४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥ या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥१६॥ नमस्तस्यै ॥ १७ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १८ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥१९॥ नमस्तस्यै ॥ २० ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥ या

में क्षुधारूपसे बिराजमान है उसको नमस्कार है ॥१९॥ उसकोनमस्कार है॥२०॥ उसको नमस्कार है ॥ २१ ॥ जो देवी संपूर्ण प्राणियों में छाया रूपसे स्थित है

उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥ १२ ॥ जो देवशक्ति रूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित है उसको नमस्कार है नमस्कार है उसको

देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १३॥ या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः

नमस्कार है ॥ १३ ॥ जो देवी सब प्राणियों में तृष्णारूपसे शोभायमान है

उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥ १४ ॥ जो देवी सब प्राणियों में क्षांतिरूप से स्थित है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको

॥ १४ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥ या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥ या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै

नमस्कार है ॥ १५ ॥ जो देवी सब प्राणियों में जातिरूप से स्थित है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥ १६ ॥ जो देवी सब

T

प्राणियों में कांतिरूपसे स्थित है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है १७ ॥ जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मीरूप से स्थितहै उसको

नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु वृत्ति-रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १८ ॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नम-

नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥ १८ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे स्थित है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार

है उसको नमस्कार है ॥१९॥ जो देवी संपूर्ण प्राणियों में स्मृतिरूप से स्थित है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥२०॥ जो देवी संपूर्ण

स्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०॥ या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः

प्राणियों में दयारूप से स्थित है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥ २१ ॥ जो देवी संपूर्ण प्राणियों में तुष्टिरूप से विराजमान

है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार है ॥ २२ ॥ जो देवी संपूर्ण प्राणियों में मातृरूप से स्थित है उसको नमस्कार है उसको नमस्कार

॥ २२ ॥ या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या । भूतेषु सततं तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमो नमः ॥२४॥ चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै नमस्तस्यै

है उसको नमस्कार है ॥ २३ ॥ जो देवी संपूर्ण भूतों में भ्रांतिरूप करके स्थित है उस देवी को नमस्कार है नमस्कार है नमस्कार है ॥ २४ ॥

जो देवी सब इन्द्रियों की और संपूर्ण प्राणियों की अधिष्ठात्री है और जो संपूर्ण प्राणियों में नित्य व्याप्त रहती है उस देवी को नमस्कार है ॥ नमस्कार है ॥२५॥जो देवी चैतन्यरूप से संपूर्ण जगत् में व्याप्त हो कर स्थित है उसको नमस्कार है ॥ उसको नमस्कार है ॥ उसको नमस्कार है ॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता। करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ २६ ॥ या सांप्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरै-

पूर्वकाल में देवताओं ने अपने अभीष्टफल पाने के लिये जिसकी स्तुति की है और देवताओं के स्वामी इन्द्रने बहुत दिनों तक जिसका सेवन किया है ॥ उद्धत दैत्यों से दुःखित किये हम देवता भक्ति से नम्र हुए अब जिस देवी को

नमस्कार कर रहे हैं और जो स्मरण करने पर उसी क्षण हमारी सब विपत्तियों को नष्ट करती है वह मंगलमयदेवी हमारे शुभ मंगलों को करे और विपत्तियोंको

नमस्यते । या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥२७॥ इति देवीसूक्तं समाप्तम् ॥

हरे ॥ २६ ॥ २७ ॥ इति देवीसूक्त समाप्तम् ॥ इसके बाद १०८ एकसौ आठ बार नवार्ण मंत्रका जप करे ।

काशीवास्तव्येन काशीस्थ काशीनाथ सं० पाठशालाध्यापकेन पं० माधवप्रसाद व्यासेन कृतदुर्गासप्तशती भाषाटीका समाप्ता ।

बाबू काशीप्रसाद भार्गव द्वारा—भार्गवभूषण प्रेस, त्रिलोचन काशी में मुद्रित ।

T

* इति *
दुर्गा सप्तशती
भाषाटीकासहिता समाप्ता ।